निरोग जीवन का राजमार्ग

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

निरोग जीवन का राजमार्ग

*

लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

*

पुनरावृत्ति सन् २०१०

मूल्य : ९.00 रुपये

विषय-सूची

निरोग जीवन का राजमार्ग

❋

स्वास्थ्य स्वाभाविक है

प्रकृति के विशाल प्रांगण में नाना जीव-जंतु, जलचर, थलचर और नभचर हैं। प्रत्येक का शरीर जटिलताओं से परिपूर्ण है, उसमें अपनी-अपनी विशेषताएँ और योग्यताएँ हैं, जिनके बल पर वे पुष्पित एवं फलित होते हैं, यौवन और बुढ़ापा पाते हैं, जीवन का पूर्ण सुख प्राप्त करते हैं।

पृथ्वी पर रहने वाले पशुओं का अध्ययन कीजिए। गाय, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, ऊँट इत्यादि जानवर अधिकतर प्रकृति के साहचर्य में रहते हैं, उनका भोजन सरल और स्वाभाविक रहता है, खानपान तथा विहार में संयम रहता है। घास या पेड़-पौधों की हरी, ताजी पत्तियाँ या फल इत्यादि उनकी क्षुधा निवारण करते हैं। सरिताओं और तालाबों के जल से वे अपनी तृषा का निवारण करते हैं, ऋतुकाल में विहार करते हैं। प्रकृति स्वयं उन्हें काल और ऋतु के अनुसार कुछ गुप्त आदेश दिया करती है, उनकी स्वयं की वृत्तियाँ स्वयं उन्हें आरोग्य की ओर अग्रसर करती रहती हैं। उन्हें ठीक मार्ग पर रखने वाली प्रकृति माता ही है। यदि कभी किसी कारण से वे अस्वस्थ हो भी जाय, तो प्रकृति स्वयं अपने आप उनका उपचार भी करने लगती है। कभी पेट के विश्राम द्वारा, कभी धूप, मालिश, रगड़, मिट्टी के प्रयोग, उपवास द्वारा, कभी ब्रह्मचर्य द्वारा, किसी न किसी प्रकार जीव-जंतु स्वयं ही स्वास्थ्य की ओर जाया करते हैं।

पक्षियों को देखिये। संसार में असंख्य पक्षी हैं। हम उन्हें इधर-उधर पेड़-पौधों पर उड़ता, फुदकता, चहकता, आनंदमंगल

करता देखते हैं, उनका मधुर गुंजन हमारे हृदय सरोवर को तरंगित कर देता है। उनका रंग, भाव-भंगिमा, शरीर की बनावट हमारे मन को मोह लेती है। कौन इन्हें इतना सुंदर, फुर्तीला-सुरीला रखता है ? कौन इनके स्वास्थ्य की खैर-खबर रखता है ? कौन इन्हें आरोग्यता के संबंध में पाठ पढ़ाता है ? और जब ये बीमार पड़ते हैं, तो कौन इनकी दवा-दारू करता है ? हमने पक्षियों को बीमारी से अकाल में मरते नहीं देखा। अधिकांश को अन्य पक्षी या मनुष्य मारकर खाते हैं। वे स्वयं अपनी मूर्खता से बीमारी बुलाकर बहुत कम मरते हैं। उनमें पूर्ण स्वस्थ्य रहने और आरोग्य का मधुर आनंद लाभ करने की सामर्थ्य है। प्रकृति उनके शरीर की रक्षा करती है, स्वयं शरीर के अंदर एकत्रित हो जाने वाले विषों को निकालने का प्रयत्न करती है, शरीर के संवर्धन का पूरा-पूरा विधान रखती है। वही उनका डॉक्टर, हकीम या वैद्य है।

प्रकृति की प्रचुरता—प्रकृति में प्रचुरता है, हर प्रकार की प्रचुरता है। आनंद, स्वास्थ्य, आरोग्य की इतनी अधिकता है कि हम उसका सीमा बंधन नहीं कर सकते। स्वास्थ्य की उस अधिकता के कारण ही प्रकृति के अनेक पशु-पक्षी, जीव-जंतु जीवन का आनंद लेते हैं; जल, वायु, प्रकाश, भोजन से जीवन-तत्त्व खींचकर वे दीर्घ जीवन के सुख लूटते हैं।

प्रकृति के कण-कण में, पत्तियों, फलों, पौधों तथा जल की प्रत्येक बूँद में आरोग्य भरा हुआ है। वायु के प्रत्येक अंश को, जिसे हम अंदर खींचते हैं, जल के प्रत्येक घूँट में, जिसे हम पीते हैं, फल और तरकारियों के कण-कण में स्वास्थ्य और बल हमारे लिए संचित है। प्रकृति के पास जीवन को सर्वांग रूप से स्वस्थ रखने के लिए सभी उपकरण हैं।

प्रकृति में वैचित्र्य है। अपने-अपने स्वभाव, रुचि, काल, अवस्था, परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जीव-जंतु, पक्षी, प्रकृति से

जीवन-शक्ति खींचता है, उसके द्वारा जैसा भी शरीर उसे मिला है, उसे वह स्वस्थ और सुंदर बनाता है, अपनी समस्त शक्तियों को कार्यशील रखता है। प्रकृति के भंडार में सभी कुछ है, शहद जैसा मधुर पदार्थ क्या कभी मनुष्य बना सकता था ? दुग्ध जैसा अमृत-सदृश्य पदार्थ क्या किसी रासायनिक लेबोरेटरी में तैयार किया जा सकता था ? मेवे, फल, तरकारियाँ, गन्ना, प्रकृति ने इस प्रचुरता से उत्पन्न किये हैं कि प्रत्येक जीव को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उचित मात्रा में ये भोजन-पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं। सर्प अपना विष एकत्रित करता है, मधुमक्खी शहद जुटाती है, नींबू खटाई के तत्त्व पृथ्वी से खींचता है, तो करेला कड़ुवाहट एकत्रित करता है। प्रकृति में नव-रस का विधान है। इन नवरसों में जो जिसे रुचे वह उसी से अपना स्वास्थ्य स्थिर रखता है।

प्रकृति में किसी भी लक्ष्य की पूर्ति के लिए सभी साधन विद्यमान हैं। आपको वाह्य उपचारों की आवश्यकता नहीं है। आप जैसा भी काम करना चाहें उसके लिए सभी उपकरण एकत्रित कर सकते हैं। भाँति-भाँति की जड़ी-बूटियाँ, पौष्टिक पदार्थ, अमृतोपम दिव्य पदार्थ हमारे लिए संचित हैं। मिट्टी से लेकर धूप, जल, वायु, सूर्य-किरण इत्यादि तक को यह शक्ति दी गई है कि वे हमारे शरीर को सबल और स्वस्थ बना सकें।

प्राकृतिक सौंदर्य—प्रकृति में वास्तविक सुंदरता है। आजकल के फैशन के मार से युक्त पुरुष या स्त्री को लोग सुंदर समझते हैं, उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते। यह मात्र भ्रम है वास्तविक सौंदर्य तो पूर्ण रूप से विकसित, परिपुष्ट स्वस्थ शरीर में है। प्रत्येक पुट्ठे और मांसपेशी में स्वाभाविक सौंदर्य है। जिस युवक या युवती के शरीर में लाल रक्त प्रवाहित होता है, जिसके शरीर में स्वाभाविक लालिमा वर्तमान है, जिनका डीलडौल संतुलित है, न कोई अंग पतला है, न कोई मोटा, न बादी, न चर्बीयुक्त, न

पेट ही बढ़ा हुआ है, नेत्र सुंदर और चमकदार हैं, त्वचा कोमल और लाल है, फेफड़े परिश्रम सहन कर लेते हैं और गहरी नींद और आराम देते हैं, स्वस्थ जल से (सोडा, लेमन, शराब, चाय, शरबत से नहीं) जिनकी प्यास शांत हो जाती है, चूरण चटनी पर जिसकी जिह्वा नहीं लपलपाती, जिनके स्वभाव में न चिड़चिड़ापन है, न क्रोध, उतावलापन, उदासी या निरुत्साह—ऐसे स्वस्थ मनुष्य को ही पूर्ण सुंदर कहना युक्तिसंगत है।

श्री विट्ठलदास मोदी के शब्दों में 'मोर के नीले-हरे पंख, सिंह की अयाल, बारहसिंघे के उलझे हुए लंबे सींग, सांड़ के चौड़े कंधे, मुर्गे की कलगी, साँप का चौड़ा फन, बिलाव की लंबी मूँछ को सुंदर मानने से कौन इनकार कर सकता है ? पशु-पक्षियों में सारी सुंदरता नर वर्ग को मिली है। प्रकृति ने जहाँ नर वर्ग को सुंदरता प्रदान की, वहाँ शक्ति भी दी। वस्तुतः पुरुष का सौंदर्य उसकी शक्ति में निहित है। उसका सौंदर्य उसकी शक्ति द्वारा प्रस्फुरित होता है।"

पुरुष हो या स्त्री—यदि वह पूर्ण स्वस्थ और सुंदर बना रहना चाहता है या कुरूप से सुरूप होना चाहता है, तो उसे प्रकृति का आश्रय ग्रहण करना होगा। प्रकृति के नियमों का पालन करना होगा। व्यायाम और प्राकृतिक भोजन के द्वारा, शरीर की प्रत्येक मांसपेशी को संतुलित रूप में विकसित करना होगा, शक्ति का अर्जन करना होगा—तभी हम सुंदर बन सकेंगे। प्रकृति में ही वास्तविक सुंदरता विद्यमान है।

चेहरे पर लाल रंग, पाउडर, क्रीम पोतने से क्या लाभ ? वह तो पानी से धुल जाएगा। यदि शरीर में मांस, स्वस्थ रक्त, उत्तम स्वास्थ्य और आरोग्य नहीं, तो उसे रेशमी कपड़ों या आभूषणों से अलंकृत करने से क्या सौंदर्य प्राप्त हो सकेगा ? वास्तविक सौंदर्य, जो चिरस्थायी है, जिसमें ईश्वरत्व प्रकट होता है, वह प्राकृतिक सौंदर्य ही है।

प्रकृति हमारी भूलें सुधारती है

हमारे शरीर की रचना ही कुछ ऐसी बनाई गई है कि अवांछनीय विजातीय द्रव्यों, संचित विषों, गंदी वस्तुओं या विषैले पदार्थों को भिन्न-भिन्न द्वारों से निकालकर बाहर करती रहती है। हमारी छोटी-मोटी भूलों—जैसे खानपान का असंयम, अत्यधिक थकान, चलते-फिरते, उठते-बैठते जीवन शक्तियों की न्यूनता इत्यादि को प्रकृति स्वयं दुरुस्त करती हैं और प्रायः प्रकृति के इस उपयोगी कार्य का हमें पता भी नहीं चलता। सृष्टि के सभी जीव-जंतु इन्हीं प्राकृतिक क्रियाओं से स्वस्थ रहते हैं। प्रकृति ने प्रत्येक शरीर में ऐसे-ऐसे गुप्त द्वार रखे हैं, जिनके द्वारा विषैले पदार्थ स्वयं निकलते रहते हैं और हमारी आकृति में यथोचित सुंदरता को अक्षुण्ण रखते हैं। यदि प्रकृति इस महान् कार्य को अपने आप स्वाभाविक गति से संपन्न न करती, तो हमारे शरीर बेढंगे हो जाते, अंगों में भद्दापन और विषमता उत्पन्न हो जाती, हम लोग रोज ही अपचन, कब्ज, स्थूलता, सूजन, फोड़े, फुंसी, गठिया, प्रमाद, सिर दर्द या अन्य ऐसे ही छोटे-मोटे रोगों के शिकार रहा करते। भाग्यवश ऐसा नहीं है। हमारे शरीर के अंदर व्याप्त प्रकृति इन विषैले पदार्थों से निरंतर संघर्ष करती रहती है, अनावश्यक पदार्थों को शरीर में ठहरने नहीं देती और हमारे साधारण शारीरिक विकारों को दुरुस्त करती रहती है।

प्राकृतिक रूप से स्वस्थ मनुष्य की पहचान—

प्रकृति ने मनुष्य को विश्व का सबसे सुंदर, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियों से संपन्न, स्वस्थ, सशक्त, सुडौल, दीर्घजीवी प्राणी बनाया है। आरोग्य और उत्तम स्वास्थ्य का मार्ग उसने बड़ा सरल और सीधा रखा है। मनुष्य तो क्या, अल्पबुद्धि वाले पशु-पक्षी भी उसे भली-भाँति समझ सकते हैं। प्राकृतिक

जीवन की आधारशिला क्या है ? इसके लिए कुछ ज्ञातव्य बातें यहाँ दी जाती हैं—

(१) **डीलडौल**—स्वस्थ मनुष्य का आकार संतुलित होना चाहिए। कद न काफी ऊँचा हो, न शरीर पतला-दुबला अस्थिपिंजरवत् हो, न भारी-भरकम मांस से लटकता हुआ पोपला हो, प्रत्युत संतुलित रूप से प्रत्येक अंग विकसित हों, शरीर की मशीन का प्रत्येक कलपुर्जा ठीक काम करता हो। प्रशस्त-उन्नत ललाट, चमकदार नेत्र, माथे व गालों पर स्वाभाविक रक्त की लालिमा हो, सिकुड़न का नाम तक न हो। पाँव व जाँघ मजबूत और शरीर का भार वहन कर सकने वाले हों। शरीर श्रम व मौसम के परिवर्तनों को संभाल सके, रोग से लड़ सके, आमाशय अपना कार्य उचित रीति से करता रहे।

(२) **आंतरिक अवस्था**—पाचन क्रिया अपना कार्य ठीक से करे, शुद्ध लाल खून निर्मित हो, शरीर से मल-विसर्जन कार्य अपनी स्वभाविक गति से होता रहे। जो भोजन खाया जाए, वह शरीर को परिपुष्ट एवं स्वस्थ रखे, अपच या दस्त से निकल न जाए। कभी अपच, कभी कब्ज, दस्त, पेट दर्द इत्यादि न हों। खाया हुआ भोजन चार-पाँच घंटे में पच जाए। खाना खाते समय रुचि एवं स्वाद स्वास्थ्य के सूचक हैं। भोजन के उपरांत आलस्य या नींद नहीं आनी चाहिए। चटपटी चीजों पर मन न चले, साधारण भोजन में ही मजा आये।

(३) **हृदय तथा फेफड़े**—शरीर के दो महत्त्वपूर्ण अंग हृदय तथा फेफड़े हैं। स्वस्थ मनुष्य में ये दोनों ही बड़े मजबूत होने अनिवार्य हैं। तेज भागने से आप हाँफ न जाँय, नासिका से श्वास लें। यह स्वस्थ फेफड़ों की पहचान है। सुषुप्तावस्था में मुँह से श्वास लेने की आदत कमजोर फेफड़ों की निशानी है। स्वस्थ फेफड़े बाहर से स्वच्छ वायु अंदर लेकर रक्त की सफाई में

सहायता करते हैं और अशुद्ध वायु को बाहर निकाल देते हैं। हृदय दूषित रक्त की सफाई निरंतर किया करता है। स्वस्थ फेफड़े और मजबूत हृदय मनुष्य को परिश्रमी और स्वस्थ बनाते हैं। युवकों में हृदय की गति प्रति मिनट ७२ होनी चाहिए।

(४) **मल-विसर्जन कार्य**—शरीर में जो कूड़ा-करकट या गंदगी एकत्रित होती रहती है, उसे निकालने के लिए प्रकृति ने कई द्वार बना रखे हैं। मलमार्ग, मूत्रमार्ग, यकृत, त्वचा, फेफड़ों के अतिरिक्त हमारे नेत्र और कान भी स्वास्थ्य के शत्रु, शरीर के अंग-प्रत्यंगों में उत्पन्न हुए विकारों को निकाला करते हैं। जब तक हमारे शरीर के ये विकार स्वाभाविक गति से स्वयं बाहर न निकलते रहें, तब तक हम अपनी मल-विसर्जक इंद्रियों को स्वस्थ नहीं कह सकते।

यदि मल विसर्जन कार्य में किसी भी प्रकार की पीड़ा होती है, तो आप स्वस्थ नहीं है। यदि मल या मूत्र के साथ रक्त आता है, तो उसके दो कारण हो सकते हैं—(१) या तो शरीर के उस भाग में कुछ चोट, घाव या सूजन आ गई है अथवा (२) आंतरिक रूप से कुछ विकार हो गया है। मल-मूत्र करने के पश्चात् एक प्रकार से शांति होनी चाहिए। यदि रक्त या पीब आवे, मल मार्ग से कीड़े आवें तो आंतरिक विकारों के सूचक हैं। मूत्र विसर्जन में यदि गर्मी या जलन हो, रक्त या पीब आवे, पेशाब गाढ़ा लसदार हो या वीर्य निकल आये तो शरीर को रोगी समझना चाहिए।

(५) **मानसिक स्थिति**—स्वस्थ्य मनुष्य मधुर, तृप्त और उत्साही होता है। चिंताएँ उसे नहीं सतातीं; चिड़चिड़ापन, क्रोध, उतावलापन, उदासी, निरुत्साह—ये सब शरीर में संचित नाना प्रकार के विकारों के द्योतक हैं। अशांत चित्त, अशुद्ध विचारों से युक्त मन, अतृप्त काम वासना से भरा हुआ अंतःकरण मानसिक विक्षुब्धता के प्रतीक हैं।

अहंकार एक प्रकार की मानसिक बीमारी है, चित्त की व्यग्रता अतृप्त वासनाएँ, विघ्न-बाधाओं से मिथ्या डर, कुत्सित कल्पनाएँ, कायरता आदि सब गिरे हुए स्वास्थ्य की निशानी हैं। इसके विपरीत निर्बल शरीर में भूतबाधा, भूतप्रेत के भय, विकार, काम वासनाएँ, क्रोध, ईर्ष्या, मोह इत्यादि भरे पड़े रहते हैं।

स्वस्थ रहने से पवित्र विचार आते हैं, मन प्रसन्न और शुभ कल्पनाओं, मधुर विचारों से परिपूर्ण रहता है। काम में जी लगता है, आलस्य या उदासी नहीं सताती, हृदय मुस्कराते हुए पुष्पों को देखकर उत्फुल्ल होता है। चमचमाते हुए तारकवृंद को देखकर मन चमचमाता है। हम प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मोहित हो जाते हैं। प्रकृति का संदेश हमें हर फूल-पत्ती और पुष्प सुनाता है।

स्वास्थ्य स्वभाविक है—

यदि आप प्रकृति के नियमों का अतिक्रमण न करें, प्रकृति के परिवार के अन्य सदस्यों की भाँति सच्चाई और ईमानदारी से उनका पालन करते रहें, तो स्वभाविक रूप से आप अपनी पूरी आयु का आनंद ले सकेंगे। प्रकृति ने आपको बहुत उच्च कोटि का जीव बनाया है। प्रसन्नता का स्रोत आपके हृदय में प्रवाहित होना चाहिए। आनंद से आपका निकट संबंध होना अनिवार्य है। यदि आप प्रकृति के निकट रह सकें तो निश्चय जानिये— आपका स्वभाव सदैव शांत और गंभीर रहेगा, आपका हृदय आंतरिक आह्लाद से भरा रहेगा और आप जीवन का स्वर्गीय आनंद लूट सकेंगे।

स्वामी शिवानंदजी के शब्दों में, "प्रकृति का स्वभाव अत्यंत कठोर और दयालु है। वह अत्यंत न्यायप्रिय है, वह न्याय में क्षमा करना नहीं जानती। सदाचारियों के लिए प्रकृति परम प्यारी माता है और दुराचारियों के लिए वह पूरी राक्षसी है। वह स्वयं राक्षसी कदापि नहीं है। वह परम दयालु जगत्माता है। केवल दुराचारियों को (जो प्रकृति के नियम तोड़कर अस्वाभाविक जीवन व्यतीत

करते हैं) वह राक्षसी प्रतीत होती है। दंड में भी प्रकृति हमें सुधारने का काम करती है। ठोकर खाने पर ही मनुष्य सावधान होता है।"

प्रकृति तत्त्व से हमारी अनभिज्ञता के दुष्परिणाम—

आज दवाई का इतना प्रचार हमारे अप्राकृतिक जीवन का द्योतक है। पहले तो हम प्रकृति के नियमों को तोड़ते हैं। जब प्रकृति हमें रोग रूप में सजा देती है, तो हम तरह-तरह की दवाइयाँ खाते हैं। इस प्रकार क्या युवक और क्या युवतियाँ सभी रसातल के मार्ग में जा रहे हैं। गुप्त रोगों, मूत्र रोगों की संख्या दिन-प्रतिदिन वृद्धि पर है। हमारा भोजन अप्राकृतिक हो चला है, हमारी रहाइश अस्वाभाविक हो चली है। हम दिन में सोते, रात में सिनेमा, होटलों, नाचघरों में मजेदारियाँ करते-फिरते हैं। अप्राकृतिक रोशनी में पढ़ते-लिखते हैं और असमय ही नेत्र रोगों से पीड़ित हो जाते हैं। अति गर्म चाय और अति शीतल बर्फदार शर्बत या सोडा लेमन पीकर हम दंत रोगों के शिकार बनते हैं। आज के नब्बे प्रतिशत फैशनपरस्त नवयुवक नेत्र और दंत रोगों से पीड़ित हैं। अस्वाभाविक मैथुन, वीर्यपात तथा गर्भपात और व्यभिचार के चक्कर में फँसे हुए नवयुवकों एवं नवयुवतियों की संख्या का पता हमें गुप्तरोगों के बढ़ते हुए विज्ञापनों और चिकित्सकों से लगता है। कलकत्ता शहर की गली-गली में स्वप्नदोष या धातुक्षय का इलाज होता है।

अप्राकृतिक रीतियों से कच्ची आयु में वीर्यपात का दुष्परिणाम बड़ा भयंकर होता है, शरीर जर्जर होता है, युवक भी वृद्ध सा दीखता है। भले ही हम कितनी ही चालाकी से पाप करें, किंतु प्रकृति बड़ी सतर्कता से सब कुछ देखती है। उसके दरबार में माफी नहीं है। क्या बड़ा, क्या छोटा सभी को वह समान रूप से दंड देती है। उसकी आँखों को आप धोखा नहीं दे सकते, प्रत्येक

नीच कर्म के लिए सजा का विधान है। शिवानंदजी ने कहा है—"प्रकृति माता अपने हाथ में डंडा लिए, तुम्हारे मर्म स्थानों पर कठोर डंडा प्रहार करने के लिए तैयार रहती है। ज्यों-ज्यों तुम वीर्य नाश करोगे, त्यों-त्यों वह तुम्हें मारते-मारते बेदम व अधमरा कर देगी। तब भी यदि न चेतोगे या सुधरोगे, तब अंत में तुम्हारा इंतजार करती हुई मृत्यु की ओर तुम्हें, सड़े फल की तरह फेंक देगी, तुम्हें उठाकर नर्क कुंड में डाल देगी। भाइयों ! लौटो, प्रकृति की शरण में आओ। वह परम दयालु है। तुम्हारा अवश्य सुधार करेगी।"

प्रकृति और दीर्घजीवन—

विश्वास रखिये, प्रकृति के नियम पालन करने से रोगी से रोगी व्यक्ति पुनः स्वास्थ्य और आरोग्य प्राप्त कर सकता है, दुबले-पतले जर्जरित शरीर पुनः हृष्ट-पुष्ट और सशक्त बन सकते हैं। जो कार्य पौष्टिक दवाइयाँ भी नहीं कर सकतीं, वह प्रकृति के नियमानुसार रहने से अनायास ही प्राप्त हो सकता है। वेदों में निर्देश किया गया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः।

(यजु० ४०/२)

अर्थात् काम करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए।

'पश्येम शरदः शतं।'
जीवेम शरदः शतं।।
श्रृणुयाम शरदः शतं।
प्र ब्रवाम् शरदः शतं।।
अदीनाः स्याम शरदः शतं।
भूयश्च शरदः शतात्।।

(यजु० ३६/२४)

हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीयें, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक बोलें, सौ वर्ष तक समृद्धिशाली रहें...... ।

उपरोक्त कथन में हमारे पूर्व पुरुषों ने यह माना है कि, यदि हम सच्चाई से प्राकृतिक नियमों का पालन करें और उनके अनुसार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करें, तो हमें अपनी पूरी आयु (अर्थात् सौ वर्ष) तक जीने का अधिकार है और यदि पुरुषार्थ करें, तो हमें इससे भी अधिक जीना चाहिए।

यदि प्राकृतिक जीवन अपनाया जाए, तो सौ वर्ष तक जीवित रहना कोई बड़ी बात नहीं। हमारे पूर्व पुरुष ऋषि-मुनि इत्यादि प्रकृति के पुण्य प्रताप से बड़ी-बड़ी उम्रों वाले हुए हैं। ग्रीस देश के इतिहास में उल्लेख है—"भारत में एक सौ चालीस वर्ष की आयु तक कई व्यक्ति जीते हैं, सौ वर्ष से ऊपर के मनुष्य को एक निराला नाम देने में आता है।" यह लेख आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व का है।

प्रकृति के प्रताप से दीर्घ जीवन प्राप्त करने वालों के शुभ नाम और आयु देखिये—यूरोप में थामसपार १५२ वर्ष, हेनरी जेन्किन्स १६६, मेरी बिलिंग ११२ वर्ष, काउंटडेस्माड १४० वर्ष, कैथराइन एडन १०१ वर्ष, अब्राहम १७५ वर्ष, इजाक १८० वर्ष, शेखसादी १०२ वर्ष, कवि अवारी ११४ वर्ष, महाराष्ट्र में निजामउल्मुल्क १०५ वर्ष, मल्लहारी धनगर ११५ वर्ष, पंडित प्रभाकर शास्त्री १०६ वर्ष, रामसेठ भुरकीसुनार १०५ वर्ष, हरद्वार रामलाल १०५ वर्ष।

यदि स्वभाविक रीति से हम जीते चले, प्रकृति के नियमों का पालन करते चलें, तो आयु क्षीण न होगी। दीर्घायु प्राप्त करने के लिए प्रकृति के नियमों का पालन अत्यंत आवश्यक है।

रोग से डरने की आवश्यकता नहीं

प्रकृति हमें बीमार नहीं पड़ने देना चाहती। साधारणतः जो लोग कुदरत के पास रहते हैं, साहचर्य बनाये रहते हैं और प्रकृति के मामूली नियमों का भी पालन करते हैं, वे बीमार नहीं पड़ते। बीमार पड़ने पर भी प्रकृति हमारी गलतियाँ सुधारने की चेष्टा करती है।

रोग प्रकृति की वह क्रिया है, जिससे शरीर की सफाई होती है। रोग हमारा मित्र होकर आता है, वह यह बताता है कि हमने अपने शरीर के साथ बहुत अन्याय किया है, अनेक कीटाणुओं को स्थान देकर विष एकत्रित कर लिया है। रोग उस आंतरिक मल का प्रतीक या बाह्य प्रदर्शन मात्र है। यह प्रकृति का संकेत मात्र है, जो हमें बताता है कि हमें अब अपनी गलतियों से सावधान हो जाना चाहिए। शरीर में स्थित गंदगी, विष, विजातीय तत्त्व या अप्राकृतिक जीवन से सावधान हो जाना चाहिए। रोग शरीर शोधन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

साधारण पढ़े-लिखे या मूढ़ व्यक्ति रोगों से बुरी तरह भयभीत हो जाते हैं। वे उसके कारणों को समझने की चेष्टा नहीं करते। प्रकृति यदि अपनी ओर से बीमारियों को ठीक करने की योजना भी करती है, तब भी वे उसके मार्ग में रोक लगा देते हैं। देखा है कि अत्यधिक दवाई और इंजेक्शन इत्यादि का प्रयोग हानिकारक सिद्ध हुआ है।

स्मरण रखिये, रोग बिना कारण के कभी उत्पन्न नहीं होते। शारीरिक या मानसिक विकार उत्पन्न होते ही सर्वप्रथम आप यह मालूम कीजिए कि शरीर में किन-किन कारणों से रोग के कीटाणु उत्पन्न हुए ? क्यों आप बीमार पड़े ? प्रकृति के किस नियम की आपने अवहेलना की है ? रोग का वास्तविक कारण समझ लेना चिकित्सा की आधारशिला है।

"रोग प्रतिकार के रूप में प्रकट होता है और यह पहले विषम अवस्था का अंत कर देता है। रोग मनुष्य के शरीर में इसलिए होता है कि उसके लिए रोग की आवश्यकता है। रोग स्वास्थ्य लाभ करने का एक उपाय है। रोग के द्वारा जब शारीरिक विकार बाहर निकल जाते हैं, तो मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। बाहर हम जिस रोग को देखते हैं, वह रोग का लक्षण मात्र है। मान लीजिए, किसी व्यक्ति को जुकाम हो गया अथवा फोड़ा निकल आया, तो हम इसी को रोग मान लेते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से यह रोग नहीं है, वरन् रोग के लक्षण मात्र हैं। रोग से शरीर की विकृत अवस्था का पता चलता है।"

रोग के प्रति हमें अपने दृष्टिकोण को बदलना होगा। हम रोग को शत्रु नहीं, मित्र मानें। अर्थात् निराशावादी बनने के स्थान पर आशावादी बनें। हमें यह विश्वास रखना चाहिए कि रोग हमें पूर्ण स्वस्थ कर देगा, संचित विकार निकाल देगा, जो शरीर के लिए लाभदायक सिद्ध होगा। यह मानसिक परिवर्तन प्राकृतिक-चिकित्सा का सहकारी है। जो व्यक्ति अपने रोगों से मुक्त होने के लिए जितना ही आशावादी बनेगा, सुखद कल्पनाओं और मधुर आशाप्रद विचारों से अपना मन भरा रखेगा, उसे रोग एक मित्र प्रतीत होगा। शरीर से हट जाने पर भी रोग सूक्ष्म रूप से अंतःकरण में विद्यमान रहता है।

डॉ० के० लक्ष्मण के शब्दों में, "आत्मा के अंतर्भूत आनंद को भूल जाना ही रोग है, जिसके कारण मन में इच्छाओं का उदय होता है। "आत्मविस्मृति ही रोग है। आजकल के बहुत से मानसिक एवं शारीरिक रोगों का कारण एक यह भी है कि, मनुष्य सत् तत्त्व की रक्षा न कर असत् एवं विजातीय तत्त्वों का संचय होने देता है। डॉ० फापड़ के अनुसार अनेक स्नायविक एवं शारीरिक रोग मनुष्य के चेतन और अचेतन मन की रहस्यमयी गुफाओं में होते हैं। पहले मन रोगी होता है, रोग चेतना पर आता है, यातनाओं और विचारों में

प्रभाव दिखाता है और अंत में स्थूल शरीर में नाना रूपों में प्रकट होता है। हर एक रोगी की सर्वप्रथम मानसिक अवस्था विकृत हो जाती है। दूषित अंतःकरण, विकृत मन और अशुभ भावनायें रोगों का कारण है।

चिकित्सा के नाम पर आपको ठगा जाता है—

आज कुदरती जिंदगी को भूलकर हम चिकित्सकों के कुचक्र में फँस गये हैं। ये लोग हमें इतनी दिलचस्पी स्वस्थ करने में नहीं लेते, जितनी बीमारी को बढ़ाने में। इनका दृष्टिकोण अधिक से अधिक रुपया ऐंठना होता है।

डॉ० राम लिखते हैं कि, हमारी लापरवाही का सबसे अधिक फायदा उन लोगों ने उठाया है, जिन्होंने समाज की चिकित्सा का ठेका लिया है। जिन लोगों को भूख नहीं लगती, उसकी दवा तैयार करते हैं। खाना हजम नहीं होता, उसकी दवा तैयार करते हैं। काम में मन नहीं लगता, उसकी भी दवा बनाते हैं। ये धातु पुष्ट करने की ठेकेदारी लेते हैं, बालों को काला करते हैं, दाँतों को जमाते हैं, लड़के (लड़की नहीं) पैदा करवाते हैं और संसार के सब पुरुषों की नपुंसकता व स्त्रियों का बांझपन मिटाकर संसार में स्वर्ग का राज्य स्थापित कराते हैं। यह लोग संसार में मकड़ी के समान अपना जाल फैलाये हुए हैं और संसार इनके जाल में फँसा है।

मूत्र रोगों से लोगों को डराकर और भीषण, जटिल रोग बता- बताकर ये उन्हें कुकर्म में प्रोत्साहन देते हैं। ताकत की दवाइयों का व्यापार आज जितना चलता है, शायद कभी नहीं चला। दुबले-पतले व्यक्तियों को व्यर्थ ही रोगी कहकर ये अटकाये रहते हैं। गुप्त रोगों में रुपया पानी की तरह बहाया जाता है और युवक चुपके-चुपके खूब उसमें ठगे जाते हैं। हर एक साधू-फकीर, कविराज, वैद्य बना बैठा समाज को चूस रहा है।

अधिकांश दवाइयाँ ऐसी दी जाती हैं, जिनमें साधारण चीजों के अलावा कुछ भी नहीं होता। कभी-कभी पानी ही दे दिया जाता है।

'नब्बे फीसदी रोग तो प्रकृति स्वयं चंगा कर देती हैं और चिकित्सक उसका श्रेय लूटते हैं। बुखार, खाँसी, दुखने वाली आँख, पेट विकार अधिक अंशों में कुदरत द्वारा ही ठीक हुआ करते हैं, किंतु इन्हें ठीक करने का सेहरा डॉक्टरों के सिर पर बाँधा जाता है। प्रकृति का विधान ही ऐसा है कि हमारी मामूली बीमारियाँ स्वयं ही ठीक होती चलें। इनमें हमारे अंदर बैठा हुआ आत्मविश्वास ही काम किया करता है। मामूली दवाई दी जाती है, तो हम समझते हैं कि हमें दवाई मिल रही है और हम चंगे हो जायेंगे। "हमें चंगे हो जाना चाहिए"—इस भाव से हमारा ही आत्मविश्वास प्रकट होकर हमें स्वस्थ होने में सहायता करता है। प्रायः देखा जाता है कि किन्हीं साधु, वैद्य, हकीम या डॉक्टर पर हमारा विश्वास ज्यादा है। "इसकी दवाई से हम अवश्य ही चंगे हो जायेंगे"—इस भावना के साथ हम उन महाशय द्वारा दी गई जो भी चीज प्रयोग में लायेंगे उसी से लाभ होगा। यह है प्राकृतिक चिकित्सा में आत्मविश्वास का चमत्कार। हमारे देखने में अनेक बार आया है कि अनेक असाध्य रोगी मानसिक शक्ति के सफल प्रयोग द्वारा अच्छे हो जाते हैं और अनेक शारीरिक रोगों को ठीक कर लेते हैं। हमारे विचारों का जो विलक्षण प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ा करता है, उस मनोवैज्ञानिक चमत्कार से आज लोग अनभिज्ञ हैं। रक्त तब तक दूषित रहेगा और हमारा शरीर रोगग्रस्त रहेगा, जब तक हमारे विचार रोगी और दूषित रहेंगे। स्वास्थ्य, बल, दीर्घायु की उत्पत्ति पवित्र विचारों द्वारा ही संभव है।

प्रकृति वही है जो आदिकाल से थी। उसके संपूर्ण नियम अटल हैं, उन्हें तोड़ने में क्या राजा क्या रंक—दोनों ही को समान रूप से सजा मिलती है। वे अटूट अपरिवर्तनीय और चिर सनातन हैं। प्रकृति विरुद्ध जाकर हम नये रोगों की उत्पत्ति कर रहे हैं। प्रकृति की गोद में विचरण करने से आदिम निवासी हमारी सभ्यता के अनेक रोगों से अपरिचित थे।

रोगों तथा अस्वस्थता को निमंत्रण

ज्ञान के इस उन्नत युग में भी कुछ व्यक्ति ऐसी मूर्खताएँ करते हैं कि शरीर के भीतर मल और विष एकत्रित हो जाते हैं। ऐसा मालूम होता है, मानों वे कह रहे हों, "हे रोग, हे अस्वस्थता ! तुम आओ, मेरे शरीर में वास करो, मैं तुम्हें निमंत्रण देता हूँ। तुम्हारे लिए शरीर में उपयुक्त वातावरण, उपस्थित करता हूँ। न्योता देकर तुम्हें बुलाता हूँ। तुम आओगे, तो मैं तुम्हारी सेवा करूँगा।"

शरीर के प्रति हमारा अत्याचार—

यदि हम अपने आहार-विहार में सजग रहें, तो कोई कारण नहीं कि हम अल्पकाल में ही मृत्यु के ग्रास बनें। किंतु हम शरीर जैसे सूक्ष्म मशीन की बहुत कम परवाह करते हैं। हम यह नहीं समझते कि यह कितनी बेशकीमती है, कितनी अमूल्य है ? यदि इसका एक भी पुर्जा बेकार हो जाए, तो असंख्य धन खर्च करने पर भी वैसा पुर्जा इसमें फिट नहीं किया जा सकता। आपका दाँत टूट जाता है, आप दंतचिकित्सा से दूसरा, दाँत लगवाते हैं। वह एक खूबसूरत दाँत लगा देता है, किंतु एक हफ्ते बाद ही वह बुरा लगने लगता है, टूट जाता है या वैसी अच्छी तरह कार्य नहीं करता, जैसा प्राकृतिक दाँत करता था। जब दाँत जैसे साधारण पुर्जे की यह बात है, तो नेत्र, हृदय, फेफड़े या अन्य सूक्ष्म अवयवों की तो बात ही कुछ और है। इन्हें तो एक बार बेकार होने पर मानवीय बाजार में खरीदा भी नहीं जा सकता। स्मरण रखिये, आपका शरीर एक अमूल्य खजाना है, यह एक से एक कीमती पुर्जों से बना है, इसमें ऐसी-ऐसी विचित्रताएँ भरी हैं कि एक बार नष्ट होने पर उन्हें पुनः नहीं बनाया जा सकता।

शरीर के प्रति हमारा अत्याचार असंख्य हैं। नेत्र सूर्य की प्राकृतिक रोशनी में कार्य करने के लिए विनिर्मित है, किंतु हम दिन में तो सोते हैं, रात में विद्युत् की तेज रोशनी में पढ़ते हैं, सिनेमा देखते हैं। समय से पूर्व ही उन्हें बेकार कर देते हैं। दाँतों से ऐसे अभक्ष्य पदार्थ खाते हैं, कभी अतिगर्म, कभी अति शीतल चीजें चबा-चबाकर उन्हें बेकार बना डालते हैं। पेट की बात ही न पूछिए। मिर्च, मसाले, बासी पूरी, कचोड़ी, मिठाई, खटाई, मद्य, मांस, चाय, काफी, न जाने कितनी राजसी पदार्थ भक्षण कर हम अग्निमांद्यता के शिकार होते हैं। तंबाकू खाना, पान, बीड़ी, भाँग, चरपरे तैलयुक्त, गरिष्ठ पदार्थ पेट में भरकर असमय ही उनकी पाचन शक्तियाँ क्षीण कर देते हैं। मादक-द्रव्य तो प्रत्यक्ष विष हैं। कौन नहीं जानता कि चाय, काफी, कोको, चरस, शराब, चंडू, गाँजा, भाँग बुरी हैं ? शोक ! महाशोक, जानते-बूझते हुए भी हम अपने पेट को बेकार करते हैं।

मनोविकारों का जाल—

मन तथा मस्तिष्क के प्रति हमारे अत्याचार इससे भी अधिक बढ़े हुए हैं। राजसी और तामसिक आहार से वैसे ही विचार उत्पन्न होंगे। तामसी आहार से मन चंचल, कामी, क्रोधी, लालची और पापी बन जाता है। चाहे हम कितनी भी साधना एकाग्रता का अभ्यास करें, किंतु तामसी आहार से स्वयं रोग, शोक, दुःख, दैन्य वेग से बढ़ते हैं और मनुष्य का पुरुषार्थ घटता है, सौभाग्य दूर भागता है, सामर्थ्य न्यून होती है। राजसी और तामसिक पदार्थों, मांस, अत्यंत उष्ण, कड़ुवा, तीक्ष्ण, गरिष्ठ, लहसुन, प्याज, अंडा, मछली, अत्यंत तले हुए—बासी, मिठाईयों से मनुष्य प्रत्यक्ष राक्षस बन जाता है। फिर यदि इन अप्राकृतिक चीजों को खाकर कोई मनुष्य काम, क्रोध ईर्ष्या, प्रतिहिंसा के वशीभूत हो कुकर्म कर डाले तो क्या आश्चर्य ?

मनोविकारों की उत्तेजना से दाहक तत्त्व बढ़ते हैं। मनोविकारों के द्वंद्व हमारी मानसिक वृत्तियाँ से संश्लिष्ट होकर रोगों की अनेकरूपता उत्पन्न करते हैं। मनोविकार हमारे रक्त में अनेक प्रकार के रसायनिक परिवर्तन किया करते हैं। जैसे, यदि हम काम वासना से विक्षुब्ध हो उठते हैं, तो रक्त में एक प्रकार की गर्मी आ जाती है, रोम-रोम तरंगित हो उठता है। यदि वासना का तांडव अधिक रहे, तो गर्मी, सूजाक, गुप्तांगों के अनेक रोग, स्वप्नदोष, बहुमूत्र और पेशाब के अनेक गुप्त रोग उत्पन्न होते हैं। क्रोध की अधिकता से रक्त में कुछ ऐसे विष उत्पन्न होते हैं, जिनसे उद्वेग बढ़ता है, त्वचा का रंग काला हो जाता है, अंग फड़कने लगते हैं, शांति, स्थिरता और बुद्धि भंग हो जाती है। मूलरूप में क्रोध भी हमारे अनेक शारीरिक रोगों का कारण बन जाता है।

मानसिक तनाव—

हमेशा किसी मनोविकार के वशीभूत रहने से अनावश्यक संघर्ष मन में चलता रहता है। भय, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा, लोभ, वासना इन पर नियंत्रण न होने से मनुष्य उत्तेजित बना रहता है। इच्छाओं की विभिन्नताओं के अनुसार मनोविकारों की अनेक रूपता का विकास होता है। प्रत्येक मनोविकार अपनी जटिलता उत्पन्न कर शारीरिक विकार का कारण बनता है। अप्राकृतिक अनहोनी कल्पनाएँ, पुरानी दुःखद स्मृतियों, दलित वासनाएँ दाहक तत्त्वों की अभिवृद्धि किया करती है। अपने आप पर किये गये इन अत्याचारों के हम स्वयं ही जिम्मेदार हैं। हम स्वयं ही रोगों को निमंत्रण देकर बुलाते हैं।

रोगों के प्रधान कारण—

"प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते, उन्हें भाँति-भाँति के रोग और दुःख घेर लेते हैं, परंतु प्राकृतिक जीवन

व्यतीत करने वाले जंगल के प्राणी रोगमुक्त रहते हैं और मनुष्य के दुर्गुणों और पापाचारों से बचे रहते हैं।" —रिटर्न टु नेचर

प्रकृति की अवज्ञा करने का परिणाम (या दंड) रोग है। यह अवज्ञा हम भाँति-भाँति से करते हैं। एक स्वस्थ मनुष्य जब अपने प्रति अत्याचार करता है, तभी वह व्याधिग्रस्त होता है। साधारण गलतियों के लिए प्रकृति हमें मामूली सी सजा सिरदर्द, जुकाम, पेट दर्द इत्यादि देकर छोड़ देती हैं, किंतु अनवरत नियमोल्लंघन का परिणाम बड़े-बड़े जटिल रोग उत्पन्न करता है। प्रकृति के नियम तो अटल हैं। अपने नियमों के अनुसार वह इस शरीर यंत्र को चलाया करती है। यदि उनके मार्ग में हम बाधा उपस्थित न करें, उसे अपना कार्य चलाने दें, तो हम दीर्घ जीवन का सुख लूट सकते हैं।

प्रकृति से मनुष्य जितना दूर गया, जितना उसका संपर्क छूटा, उतनी ही बीमारियाँ बढ़ी हैं। संसार ने पश्चिमी सभ्यता का दुष्परिणाम भुगत लिया है ? भारतीय ऋषि-मुनि सदैव प्रकृति माता के संपर्क में रहने का उपदेश देते रहे हैं। इस सभ्यता ने हमें सबसे अधिक सुख और दीर्घ जीवनदान दिया है। आदिम युग में जब वह प्रकृति की गोद में खेलता-कूदता आखेट करता रहा—उसने सबसे अधिक आनंद किया। जब वह "सभ्यता" के दायरे में बँधा, तो उसका प्रकृति से संबंध टूटने लगा। उन्नति के नाम पर वह धीरे-धीरे प्रकृति से दूर हटता गया। फलतः आज वह नाना प्रकार की व्याधियों का शिकार है।

प्राकृतिक जीवन से दूर हटने का क्या कारण है ? यह है—हमारा आजकल का सभ्यतापूर्ण मिथ्या आहार-विहार। मिथ्या आहार-विहार से हमारे शरीर में विष रुक जाते हैं। दूषित मल पहले पेट के भीतरी छेदों के पास एकत्रित होते हैं, फिर वहीं से भिन्न-भिन्न अंगों में जाकर अपना कुत्सित प्रभाव दिखाते हैं। आइये, विस्तार से हम आहार-विहार पर विचार करें।

मिथ्या आहार—

हममें से अधिकांश व्यक्ति अपने दाँतों से कब्र खोदते हैं। अपने भोजन को ऐसा अप्राकृतिक बना लेते हैं कि पेट में एक पंसारी की दुकान बन सकती है। हमने भोजन क्षुधा निवारण के लिए नहीं, स्वाद के लिए नाना प्रकार की मिठाइयों, चटनियों, अचार, स्वादिष्ट चूरन, तले हुए पदार्थ, अभक्ष्य पदार्थों का भी उपयोग प्रारंभ कर दिया है। हमारे सामने छप्पन प्रकार के भोजनों से भरा हुआ थाल आता है और हम भूखे न होने पर भी केवल जिह्वा के स्वाद से प्रेरित होकर ठूँस-ठूँसकर खाते हैं। बनावटी रसों तथा स्वादों के प्रयोग सभ्य जगत् में चल रहे हैं। इनके मोह में पड़कर मनुष्य प्राकृतिक रसों तथा स्वाद को विस्मृत करता जा रहा है। बड़े शहरों में हलवाइयों, मिठाई वालों, अचार, मुरब्बे वालों ने नए-नए मिश्रणों से भिन्न-भिन्न वस्तुएँ तैयार की हैं। चाय, बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू, सुपारी के बड़े-बड़े कारखाने और सजी हुई दुकानें वृहत् संख्या में दृष्टिगोचर होती हैं। फल और तरकारियों को भी इस प्रकार बनाया जाता है और इतने मसाले-खटाई इत्यादि भर दी जाती हैं कि उनका मूल स्वाद विकृत हो जाता है। खाते समय यह बात ही नहीं होती कि कौन-सी सब्जी हम खा रहे हैं ? उनके विटामिन तो प्रायः बिल्कुल ही नष्ट हो जाते हैं।

शक्कर का प्रयोग बढ़ रहा है। भिन्न-भिन्न प्रकार की चिकनाई, मांस का व्यवहार समझदार व्यक्तियों में अधिक होने लगा है। मांसाहारियों ने सुखाया हुआ मांस प्रयोग में लाना प्रारंभ कर दिया है। जहाँ संसार में खाने के लिए एक से एक अच्छी चीज विद्यमान है, वहाँ आज मांस का व्यवहार देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे मनुष्य जागकर पुनः सोने की चेष्टा कर रहा है।

पेय पदार्थों में अप्राकृतिक तत्त्व घुस पड़े हैं। स्वच्छ-निर्मल जल को छोड़कर हम सोडा, लेमन, चाय, काफी, भाँति-भाँति के

शर्बत, चटनी, शराब इत्यादि का प्रयोग कर रहे हैं। मादक द्रव्यों के व्यवहार से हम रोगों के शिकार बन रहे हैं। मादक द्रव्य रक्त में अनेक विष, हानिकारक तत्त्व उत्पन्न करते हैं।

हमारी दवाइयाँ कई बार इतना लाभ नहीं करतीं, जितना उलटकर हानि पहुँचा देती हैं। आजकल की दवाईयाँ रोग को दबाती हैं। उसे जड़मूल से विनष्ट नहीं करतीं। लोग समझने लगे हैं कि दवाई ली और रोग गया। ठूँस-ठूँसकर आवश्यकता से अधिक खाया और फिर मुट्ठी भर चूरन खा लिया, काम हो गया। यह बड़ी ही प्रमादात्मक बातें हैं। तरल पदार्थों की आवश्यकता की पूर्ति चाय, शरबत और सोडा पीकर करने वाले व्यक्ति यह नहीं जानते कि चाय और कहवे के रूप में वे "टैनिक एसिड" और "कैसीन" विष पी रहे हैं। शरबत और सोडे में शक्कर की अधिक मात्रा लेकर वे डायबिटीज के मरीज बन रहे हैं।

हमारा शरीर १६ तत्त्वों का बना है। कैलशियम, लोहा, पौटेशियम एवं फास्फोरस इत्यादि लवण भोजन द्वारा शरीर को हमेशा प्राप्त होते रहने चाहिए। वास्तव में लवण, तरकारियों और फलों में, जो विटामिनों की खान हैं—पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं, किंतु हम उन्हें बहुत पकाकर नष्ट कर देते हैं। ये सभी तत्त्व उचित मात्रा में हमें नहीं मिल पाते।

अधिक भोजन—

एक बहुत बड़ी गलती अधिक भोजन की है। आवश्यकता से अधिक भोजन करना पेट के साथ प्रत्यक्ष अत्याचार है। प्रातःकाल हम दूध और मिठाइयाँ, दोपहर में ठूँस-ठूँसकर भोजन, शाम का फिर नाश्ता और रात को भोजन करते हैं। सोते समय दूध पीते हैं, बीच में बार-बार छोटी-मोटी चीजें जैसे फल, चाय के प्याले, सिगरेट, चाट-पकोड़ी, सोडा, रबड़ी, मिठाई न जाने कितना अधिक खा डालते हैं, नब्बे प्रतिशत बीमारियाँ अधिक भोजन खाने से होती

हैं। "एक चौथाई भोजन से मनुष्य का पोषण होता है और तीन चौथाई से डॉक्टरों की डॉक्टरी चला करती है।" हमारी पाचन-शक्ति के ऊपर इतना बोझ पड़ जाता है कि अजीर्ण, मंदाग्नि, उल्टी, दस्त, ग्रहणी, बुखार आदि हमें आ घेरते हैं। आवश्यकता से अधिक खाना शारीरिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से घृणित है। शारीरिक दृष्टि से तो यह इसलिए निंद्य है कि शरीर के अंदर कूड़ा-करकट-गंदगी का बोझ बढ़ता है और मल-निष्कासक अवयवों पर व्यर्थ का बोझ लदता है, शरीर में विष एकत्रित होकर रोग उत्पन्न होते हैं, और आर्थिक दृष्टि से इसलिए बुरा है कि मनुष्य को बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

अप्राकृतिक विहार—

"विहार" का अभिप्राय है, हमारा रहन-सहन। टहलना, घूमना-फिरना, बैठना, रति-क्रीड़ा। "विहार" का हमें विस्तृत अर्थ लेना चाहिए। आज के नगरों, तंग गलियों, गंदी सड़कों, बिना रोशनदान और छोटी खिड़कियों वाले मकानों को देखिये। शरीर की प्रथम आवश्यकता है—शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल वायु। इन गंदी गलियों में शुद्ध वायु भी मिलना एक वरदान है। आबादी अधिक होने से लोग सीलन भरे अंधेरे कमरों में इतने अधिक लोग भरे रहते हैं कि उन्हें अनेक प्रकार के छूत के रोग लग जाते हैं। व्यायाम के लिए स्थान नहीं मिलता। सोना, बैठना, भोजन पकाना, स्टोर तथा नाना वस्तुएँ रखना आदि सभी काम उसी में होते हैं। शुद्ध वायु और पर्याप्त प्रकाश न मिलना रोगों का प्रथम कारण है।

घरों के पश्चात् हम अधिक समय ऑफिसों, कल-कारखानों, दफ्तरों और दुकानों पर व्यतीत करते हैं व अप्राकृतिक ढंग से बैठते हैं, रीढ़ की हड्डी झुकाये रहते हैं, फेफड़ों में पूरी हवा नहीं भरते अधूरा श्वास लेते हैं। यथेष्ट मात्रा में जल नहीं पीते,

आमाशय को सुखा डालते हैं। इन प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति यथासमय न करने के कारण हम रोग रूपी सजा पाते हैं।

टहलने और घूमने-फिरने का हमें बहुत कम अवसर प्राप्त होता है। जब से साइकिल का प्रयोग प्रारंभ हुआ, तब से तो यह समझिये—हमने अपने पाँवों में स्वयं कुल्हाड़ी मार ली। मनुष्य का निर्माण एक भागने, छोड़ने वन्य पशुओं का आखेट करने वाले शिकारी के रूप में हुआ। जंगलों, प्रकृति के अंचल में बहने वाली सरिताओं के तटों, अमराइयों, वृक्ष और लताओं के मध्य रहकर उसने उस युग में सबसे उत्तम स्वास्थ्य और आयु प्राप्त की। आज हम एक ही स्थान पर बैठे रहकर अपनी तोंद फुला रहे हैं, पैरों को अशक्त बनाकर पंगु-से बने हुए हैं। स्वच्छ हवा छोड़कर पूरा-पूरा दिन दुकानों और कारखानों में व्यतीत कर देते हैं।

किसी धन-संपन्न परिवार के स्त्री-पुरुषों के मोटे-मोटे शरीर को देखकर जो व्यक्ति के स्वास्थ्य का अनुमान करते हैं, वे स्वास्थ्य और शक्ति को पहचानने में बड़ी भूल करते हैं। धनी व्यक्तियों के भारी भरकम शरीर स्वास्थ्य के परिचायक नही हैं। वे तो सदा अपच, कब्ज, खट्टी डकारों तथा बादी के शिकार रहते हैं। ये प्रकृति से बहुत दूर जा पड़े हैं। धन का मद उनके और प्रकृति के मध्य एक दीवार है। स्वास्थ्य और शक्ति का धन के साथ कोई संबंध नहीं है।

जब से मनुष्य ने शारीरिक श्रम कम किया, जब से मशीनों का युग आया, तब से उसका शरीर आराम-तलब, कमजोर और दुर्बल सा हो गया है। मौसम की तनिक सी भी प्रतिकूलता को वह बरदाश्त नहीं कर पाता। साइकिल, मोटर इत्यादि ने हमारे पाँव अशक्त किये और मशीनों ने हाथों का काम संभाल लिया। शारीरिक श्रम क्रमशः कम होता गया। शरीर-विज्ञान का यह नियम है कि जिस हिस्से या अवयव से कार्य अधिक लिया जायेगा, वह

मजबूत बनता जायेगा, किंतु जिसे निठल्ला और बिना काम छोड़ दिया जायेगा, वह निर्बल होता जायेगा। धनी पुरुष तो शारीरिक श्रम करते ही नहीं। अतः वे सबसे अधिक गिरे हुए स्वास्थ्य के शिकार होते हैं।

विषय-वासना की अतृप्ति और आधिक्य आज जितनी है, उतनी कभी नहीं रही है। समाज में गुप्त रोग—बहुमूत्र, स्वप्नदोष, सुजाक, गर्मी, उपदंश, इंद्रिय निर्बलता इत्यादि बड़ी मात्रा में फैले हुए हैं। कामोत्तेजक घृणित साहित्य की बिक्री बढ़ रही है। तज्जनित अनाचार कामोपभोग की इच्छा, तृप्ति के नाना साधन, गुप्त व्यभिचार, भ्रष्टता, यौन रोग बढ़ती पर हैं। गंदे उत्तेजक उपन्यास कहानियाँ पढ़ने से और गंदे सिनेमा के फिल्म देखने से युवक-युवतियों की काम-वासनाएँ अल्पवय में ही उत्तेजित हो उठती हैं, वे कामोपभोग के लिए बुरी तरह लालायित रहते हैं। युद्धकालीन व्यभिचार ने समाज में मनमाना दुराचार, गुप्तरोग, अपराधों की संख्या बढ़ाई है। जो विवाहित हैं, वे पत्नी के साथ निरंतर अमर्यादित भोग याने व्यभिचार ही कर रहे हैं।

श्री बैजनाथ महोदय इस विषय में लिखते हैं—"लोग समझते हैं कि विवाह जीवन का द्वार है। उसके द्वारा मनुष्य अपने जीवनोपवन में घुसे और मनमानी विषय-विलास लूटे। पति-पत्नी के बीच भला भोग की कोई सीमा क्यों हो ? वहाँ तो एक-दूसरे की वासना की तृप्ति के लिए अपना शरीर अर्पण कर देना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है—ऐसे नर-पशुओं को अपनी पत्नी की बीमारी और गर्भावस्था का भी ख्याल नहीं रहता। वे तो विकार के कारण पागल और अंधे रहते हैं। संसार में विषय-भोग के अतिरिक्त उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता।"

जब हम निर्बल, निःसत्व और रक्तहीन नर-कंकालों को देखते हैं, तो हमें उन पर बड़ा तरस आता है। अल्पावस्था में

विवाह अब इस उन्नत युग में भी हो रहे हैं। अप्राकृतिक रूप से काम वासना को भड़काने में सिनेमा और नाटक, शृंगार प्रधान कविताएँ, कामोत्तेजक उपन्यास, अश्लील साहित्य, घर का गंदा वायुमंडल, कुसंगति, गालियाँ प्रमुख हैं। ऋतु शांति, गर्भाधान इत्यादि हृदय के अंतस्थल में छिपी विकाराग्नि को अप्राकृतिक रूप से कच्ची आयु मे जाग्रत् करते हैं।

प्रायः माता-पिता विषय-वासना के वशीभूत हो इतने अंधे हो जाते हैं कि वे अपने बच्चों के सम्मुख ही नाना प्रकार के विकार-जन्य कुचेष्टाएँ करते रहते हैं, अनजाने में ही इस प्रकार वे दूषित कुसंस्कार बच्चों के कोमल अंतर्जगत् पर डाल देते हैं।

निम्नवर्ग के लोग—नौकर या अन्य व्यक्ति बड़े आदमियों के बच्चों तक को कुसंगति में डाल देते हैं। निर्दोष बच्चों को पान, सिगरेट, रबड़ी, मलाई, भांग, गाँजा, चरस इत्यादि अभक्ष्य पदार्थों की आदत डालकर पाप के गर्त में ढकेलते हैं।

मिथ्या आहार तथा अप्राकृतिक विहार के कारण हम अंधे बने, प्रकृति के रहस्यों को भूलने लगे, प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने लगे। प्रकृति-तत्त्व क्या है ? वह किस प्रकार हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है ? प्रकृति किस प्रकार हमारे स्वास्थ्य की रक्षा किया करती है ?—ये सब बातें हमने भुला दीं। जो आराम का समय है, उस समय हम कार्य में जुट गये, काम के समय आराम करने लगे। पीने के लिए हम कृत्रिम चीजों का प्रयोग करने लगे, जीवन में व्यर्थ आडंबर हमने मोल ले लिए। हमारे वस्त्र इतने अधिक हो गये कि शरीर पर स्वभाविक रूप से हवा भी नहीं लग पाती, पाँवों में हमने मोजे-जूते डाट लिए, परिश्रम हम छोड़ बैठे, व्यर्थ के अनेक आडंबरों में हम फँस गये। हमारे जीवन में भ्रम, चिंताएँ, अतृप्त वासनाएँ, दलित अनुभूतियाँ वृद्धि पर हैं। हमारे जीवन में प्रकृति से संबंध प्रायः टूट-सा चला है। बड़े-बड़े

शहरों में चलने वाले कल-कारखाने, मिल और फैक्टरियाँ हमारे जीवन में कृत्रिमता उत्पन्न कर रही हैं। हम रात-दिन रुपये की चिंता करते हैं; उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते-प्रत्येक घड़ी हमारे सामने अर्थ-चिंता रहती है। हम यह नहीं जानते कि कम पैसे से भी हम स्वास्थ्य, शक्ति, दीर्घ जीवन, सौंदर्य, प्राप्त कर सकते हैं।

प्राकृतिक जीवन ही वास्तविक जीवन है। प्रकृति तत्त्व में सभी उत्तम पदार्थों का सम्मिश्रण है। यदि हम आधुनिक सभ्यता के महारोग से अपने आपको मुक्त कर सकें और जीवन में सरलता और स्वभाविकता का अवलंबन कर सकें, तो जीवन का वास्तविक आनंद उपलब्ध कर सकते हैं। हम प्रकृति के जितना ही निकट आयेंगे, जितनी सच्चाई के साथ प्राकृतिक-नियमों का पालन करेंगे, उतने ही अंशों में स्वास्थ्य लाभ करेंगे।

स्वस्थ रहने की दिनचर्या

"भावप्रकाश" के अनुसार हम यहाँ स्वास्थ्य, सुख एवं दीर्घायु की कामना रखने वाले पाठकों के लिए प्रकृति की दृष्टि से दिनचर्या दे रहे हैं। इसे ध्यानपूर्वक अनुसरण करना चाहिए।

निरोगी कौन है ?

सुश्रुत कहते हैं—जिस मनुष्य के वात, पित्त, कफ आदि दोष, अग्नि, धातु और मल—समान में स्थित हों, जो व्यक्ति अपने शरीर के अनुसार समान रूप से क्रियाएँ करता हो और जिसके देह और मन प्रसन्न हों—वह मनुष्य स्वस्थ (निरोगी) कहलाता है।

प्रातःकाल क्या करें ?

स्वस्थ्य मनुष्य आयु की रक्षा के लिए चार घड़ी तड़के अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त में उठे और उस समय दुःख की शांति के लिए

ईश्वर का स्मरण करे। फिर दही, घी, दर्पण, सरसों विल्व, गोरोचन और फूल माला—इनका दर्शन और स्पर्श करे—ये शुभकारक हैं।

यदि और अधिक जीवन की अभिलाषा हो, तो घी में अपना मुख नित्य देखें। प्रातःकाल मल, मूत्र, आदि का विसर्जन करने से दीर्घायु होती है, क्योंकि इनसे पेट का गुड़-गुड़ाहट, अफरा और भारीपन आदि सब दूर हो जाते हैं। मल को रोकने से पेट का फूलना, शूल, गुर्दा में कतरन के सदृश पीड़ा होती है तथा मल का अवरोध होता है। डकार बहुत आने लगती हैं अथवा मुख में से बदबू निकलने लगती है। अधोवायु को रोकने से पेट में वायु संबंधी अन्य रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। मूत्र रोकने से मूत्राशय में तथा लिंग में शूल होता है, मूत्र कृच्छ्र, मस्तक में दर्द, शरीर की नम्रता और तत्क्षण का संपूर्ण संधियों में खींचने सदृश पीड़ा होती है। मलमूत्र का वेग हो, तो तुरंत मलमूत्र का त्याग करना चाहिए। इससे पहले अन्य कार्य न करें।

दतौन कैसी हो ?

बारह अंगुल लंबी, कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग की तरह मोटी, सीधी, गाँठ और छिद्ररहित ऐसी दतौन करें। दतौन की नई कूँची से एक-एक दाँत को घिसे। शहद, सोंठ, मिर्च और पीपल—इनके मिले हुए चूर्ण से अथवा तेल की भावना दिये हुए सैंधे नोन के चूर्ण से व तेज वल्कल नामक लकड़ी के चूर्ण से दाँतों को नित्य शुद्ध करें। मीठी दतौन में महुआ, तीक्ष्ण में करंज, कड़वी में नीम और कसैली में खैर श्रेष्ठ है। समय, दोष और प्रकृति को विचार करके योग्य रस और योग्य शक्ति वाले वृक्ष की लकड़ी की दतौन करे और दंत मंजन भी योग्य ही प्रयोग में लावें। इस प्रकार दतौन करने से मुख की विरसता (बेजायकेपना), दाँत, जीभ तथा मुख के रोग नहीं होते। रुचि, स्वच्छता और शरीर में हल्कापन होता है।

जीभी का प्रयोग—

जीभ साफ करने की जीभी सोने की, चाँदी की या तांबे की बनवाएँ और यदि यह न मिले, तो कोमल चिरी हुई लकड़ी की दतौन अथवा नर्म पीतल आदि की बनवावें, दस अंगुल लंबी, कोमल और स्निग्ध जीभी से जीभ के मैल को दूर करें। जीभी करने से जीभ का मैल, विरसता, दुर्गंधता और जड़ता दूर होती है।

शीतल जल से बार-बार कुल्ला करें, इससे कफ, तृषा और मल दूर हो जाता है तथा भीतर से मुख स्वच्छ होता है। थोड़े गर्म जल से कुल्ला करने से कफ, अरुचि, मैल तथा दाँतों की जड़ता दूर होती है और मुख हल्का हो जाता है। शीतल जल से मुख धोने से रक्त, पित्त और मुख के मुँहासे, झाँई इत्यादि नष्ट हो जाते हैं, थोड़े गर्म जल से कफ तथा वात दूर होती है, स्निग्धता आती है और दुःख का शोक नष्ट होता है।

तेल का उपयोग—

नित्यप्रति नाक में सरसों आदि का तेल डालने का अभ्यास करें। कफ बढ़ा हो, तो प्रातःकाल, पित्त बढ़ा हो, तो दोपहर में और वायु बढ़ी हुई हो, तो सायंकाल में नाक में सरसों का तेल डालें। नाक में तेल डालने से मुख में सुगंध आती है, शब्द में स्निग्धता होती है। इससे इंद्रियाँ पुष्ट रहती हैं और शरीर की सिकुड़नें, श्वेत बाल, झाँई उस मनुष्य को नहीं होते।

अंजन लगाने के लाभ—

सफेद सुरमा नेत्रों को सदा हितकारी है। इसलिए इसको नेत्रों में सदा लगाना चाहिए। इससे नेत्र मनोहर और सूक्ष्म वस्तु को देखने वाले हो जाते हैं। काला सुरमा भी अच्छा होता है, इसके लगाने से नेत्रों को खुजली, मैल तथा दाह नष्ट होती है और नेत्रों का पानी बहना बंद हो जाता है। रात में जागा हुआ, थका हुआ,

उल्टी करने वाला, जो भोजन कर चुका हो, उनको सुरमा या अंजन नहीं लगाना चाहिए।

दाढ़ी बनवाने और क्षौर कर्म से लाभ—

पाँच-पाँच दिन में नख, दाढ़ी, केश और रोम कतरवाये। हजामत से शरीर की शोभा होती है, पुष्टता बढ़ती है, पवित्रता होती है, धन की प्राप्ति होती है, आयु बढ़ती है और शरीर में कांति बढ़ती है। नाक के बाल कभी न उखड़वाये, क्योंकि इससे नेत्र निर्बल हो जाते हैं। कंघे से बालों को काढ़कर पुष्ट करें, इससे केश स्वच्छ होते हैं और उनकी धूल, कृमि तथा मैल दूर होता है।

शीशे में मुख देखने से लाभ—

शीशे में मुख देखना मंगल रूप है, कांतिकारक, पुष्टिकर्ता बल तथा आयु को बढ़ाने वाला और पाप तथा दरिद्रता का नाश करता है।

व्यायाम कीजिए—

कसरत करने से शरीर में हलकापन और काम करने की सामर्थ्य आती है, शरीर सुंदर तथा पुष्ट होता है, कफादि रोगों का क्षय होता है और अग्नि की वृद्धि होती है। जिसका शरीर व्यायाम से पुष्ट हो गया हो, उसको कभी कोई रोग नहीं होता, विरुद्ध अन्न भी पच जाता है, शिथिलता नहीं आती। अकस्मात् वृद्धावस्था नहीं आती।

व्यायाम बसंत ऋतु में तथा शीतकाल में विशेष हितकारी है। खाँसी, श्वास, क्षय, रक्त तथा पित्त रोगी, दुर्बल, क्षतोदर रोगी को भोजन करने के पश्चात् कभी कसरत नहीं करनी चाहिए। बहुत कसरत करने से खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, श्रम, रक्तपित्तादि उत्पन्न होते हैं—इसलिए साधारण व्यायाम ही करना चाहिए।

मालिश से लाभ—

संपूर्ण अंगों में नित्य तेल का लगाना पुष्टिकारक है, किंतु विशेष करके सिर में, कानों में और पाँवों में तेल की मालिश करें। सरसों का तेल, अग्नि के संयोग से अगरु आदि सुगंधित पदार्थों का निकाला हुआ तेल, चंपा, चमेली, बेला, जूही, मोतिया आदि पुष्पों से सुवासित किया हुआ तेल और अन्य द्रव्यों से मिलाकर बनाया हुआ तेल सर्वथा हितकारी है।

सिर में मला हुआ तेल संपूर्ण इंद्रियों को तृप्त करता है, दृष्टि को बल देता है और सिर तथा त्वचा के रोगों को दूर करता है। सिर में कोमलता आती है, आयु की वृद्धि होती है, देह पुष्ट होती है। केशों में तेल लगाने से बाल बढ़ते हैं, लंबे, नर्म, दृढ़ और काले हो जाते हैं तथा सिर में भरे रहते हैं।

नित्य कान में तेल डालने से कान में रोग तथा मैल नहीं होते तथा गरदन और हनुग्रह नामक रोग, ऊँचा सुनना तथा बहरापन भी नहीं होता। कानों में रस आदि पदार्थ डालने हों, तो भोजन के पूर्व डालें और तेल आदि सूर्य अस्त होने पर डालें। पाँवों में तेल मलना पाँवों की स्थिरता करता है, निद्रा और दृष्टि को प्रसन्न रखता है। कसरत का अभ्यास करने से और पाँवों में तेल की मालिश करने वाले मनुष्यों के पास रोग नहीं आते, जैसे गरुड़ के समीप सर्प नहीं आते।

स्नान के समय तेल का प्रयोग—

स्नान के समय तेल का प्रयोग किया हुआ रोमकूप, शिराओं के समूह और धमनियों के द्वारा संपूर्ण शरीर को तृप्त करता है और अत्यंत बलदायक है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को जल से सींचने से पत्रादिक की वृद्धि होती है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर को तेल के द्वारा मलने से धातुओं की वृद्धि होती है। नवीन ज्वर

वाला, अजीर्णयुक्त, जिसने जुलाब लिया हो, वमन करने वाला—इन्हें तेल की मालिश वर्जित है।

उबटन से लाभ—

मैल को दूर करने के लिए शरीर में उबटन मलने से मेद और कफ भी नष्ट होता है, वीर्य की वृद्धि तथा बल की प्राप्ति होती है। रुधिर यथावत् चलता है और त्वचा स्वच्छ तथा कोमल होती है। मुख पर उबटन मलने से नेत्र दृढ़ होते हैं, कपोल पुष्ट होते हैं, मुँहासे और झाँई नहीं होती, हुई हो, तो नष्ट हो जाती है और मुख कमल के समान शोभायमान हो जाता है।

स्नान एक आनंददायक अनुभव—

स्नान करना अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, शक्ति, आयु और ओज को बढ़ाने वाला, उत्साह तथा बल को देने वाला और खुजली, मैल, परिश्रम, पसीना, आलस्य, तृषा, दाह तथा पाप इनको दूर करता है। शीतल जल आदि से सींचने से शरीर के बाहर की गर्मी मोड़ित होकर भीतर जाती है। इनसे स्नान करते ही भूख लगती है।

शीतल जल से स्नान करने से रक्त-पित्त दूर होता है। ऊष्ण जल से स्नान करने से बल बढ़ता है, वात पित्त, कफ का नाश होता है। सिर से अत्यंत गर्म जल से स्नान करना सदा आँखों के लिए बुरा है। जो व्यक्ति शरीर में आँवलें मलकर स्नान करते हैं, वे सौ वर्ष पर्यंत जीते हैं। ज्वर, अतिसार, नेत्र, कान के दर्द वाला, वातरोगी, जिसके पेट में अफरा हो, पीनस रोग युक्त, अजीर्ण वाला—इन सबको स्नान नहीं करना चाहिए। भोजन के पश्चात् भी स्नान करना ठीक नहीं है। स्नान करने के बाद वस्त्र से अंग को खूब रगड़कर पोंछना चाहिए। इससे कांति बढ़ती है और खुजली और त्वचा के दोष दूर होते हैं।

भिन्न-भिन्न वस्त्र तथा उनके गुणदोष—

रेशमी कपड़े खासतौर पर पीतांबर और टसर, ऊनी वस्त्र तथा लाल रंग के कपड़े वात, पित्त और कफ को दूर करने वाले हैं. इसलिए जाड़ों में ये वस्त्र पहिने। जोगिया रंग के कपड़ों से चित्त पवित्र और शीतल होता है, पित्त दूर होता है। इसलिए गर्मियों में उन्हें धारण करना चाहिए। सफेद कपड़े शुभदायक, शीतल और धूपनिवारक हैं। जो गर्म हैं न शीतल हैं—ऐसे वस्त्र वर्षाकाल में धारण करें। निर्मल और नवीन वस्त्र कीर्ति देने वाले हैं, काम को प्रदीप्त कर देते हैं, आयु को बढ़ाते हैं, शोभायुक्त करते हैं, आनंददाता हैं, त्वचा को हितकारी हैं, वशीकरण तथा रुचि उत्पन्न करने वाले हैं। श्रेष्ठ पुरुष कभी मैले वस्त्र न पहिने, क्योंकि मैले वस्त्रों से शरीर में खुजली होती है, जूयें इत्यादि जीव उत्पन्न हो जाते हैं और ग्लानि, अशोभा तथा दरिद्रता प्राप्त होती है।

भोजन के संबंध में शास्त्रीय विधि—

भोजन का समय हो तो मांगलिक पदार्थों का दर्शन करें। संसार में ब्राह्मण, गौ, अग्नि, पुष्पों की माला, घृत, सूर्य, जल और राजा—ये आठ मांगलिक हैं। इनका दर्शन करने से नित्य आयु और धर्म की वृद्धि होती है। भोजन से पहले अथवा बाद में खड़ाऊँ धारण करे क्योंकि इनसे पाँवों के रोग दूर होते हैं, शक्ति प्राप्त होती है, नेत्रों के लिए हितकारी हैं और आयु को बढ़ाने वाले हैं।

जो मनुष्य भूख लगने पर नहीं खाते—उनके शरीर की जठराग्नि मंद हो जाती है। शरीर की अग्नि खाये हुए आहार को पचाती है। आहार न मिलने से वात, पित्त, कफ को पकाती है। दोषों का क्षय होने पर धातुओं को पचाती हैं और धातुओं का क्षय होने पर प्राणों को पचाती है, अर्थात् प्राणों का नाश करती है।

आहार से तत्काल देह का पोषण होता है। बल की वृद्धि तथा स्मृति, आयु, शक्ति, वर्ण, उत्साह, धैर्य तथा शोभा की वृद्धि होती है। संध्या और प्रातःकाल—इन दोनों समय भोजन करने की शास्त्र में आज्ञा है। भूख लगे तभी भोजन का समय है, ऐसा जानना चाहिए।

भोजन करने से पहले नमक और अदरक खाना हितकारी है। यह अग्नि को दीप्त कर रुचिकारक और जीभ व कंठ को शुद्ध करने वाला है। सेंधा नमक स्वादिष्ट, पाचक, हलका, स्निग्ध, रुचिकारक, शीतल, वीर्यवर्द्धक, सूक्ष्म, नेत्रों के लिए हितकारी और त्रिदोषनाशक है।

एकाग्रचित होकर पहले मधुर रस, बीच में खट्ठा तथा खारी रस और अंत में तीक्ष्ण, कड़ुवा तथा कसैला रस खाना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति पहले अनार खाये, परंतु उसमें केला और ककड़ी का त्याग करें। कँवल की ताल, भसींड़, शालूक, कंद और ईख इत्यादि को पहले ही खाये, भोजन के बाद पिष्टमय पदार्थ, चावल, चिल्ले आदि न खाये, आवश्यकता से अधिक भी न खा जाये।

पहले भी घी से पूर्ण गरिष्ठ पदार्थ खाये। फिर कोमल पदार्थ खाये और अंत में द्रव्य रूप में पतले पदार्थ खाये।

भोजन में जल कितना पिएँ ?

पेट के दो भागों को अन्न से भरें, तीसरा भाग जल से और चौथा भाग वायु के चलने-फिरने के लिए खाली रहने देवें। अन्न के रस से प्रथम जीभ तृप्त होने पर—दूसरे पदार्थ के स्वाद को नहीं जानती। इसलिए बीच-बीच में थोड़ा सा जल पीकर जीभ को साफ कर लें। स्मरण रखें, अधिक जल पीने से अन्न जल्दी नहीं पचता, और बिल्कुल जल न पीने से भी यही दोष होता है। अतः बार-बार थोड़ा-थोड़ा जल पीना चाहिए। भोजन करने से पहले जल पिये तो

अग्नि मंद हो जाती है, मध्य में पीने से अग्नि दीप्त होती है और अंत में पानी पीने से शरीर मोटा होता है।

भोजन के पश्चात् दूध क्यों पियें ?

शिष्ट पुरुष भोजन के अंत में दूध पीते हैं। दूध स्वाद रसान्वित, स्निग्ध, सामर्थ्यवान्, धातुवर्धक वायु तथा पित्तहारी, वीर्यवर्द्धक, कफकारी, भारी और शीतल है। हम नित्य प्रति दाह कारक जो-जो अन्न खाते हैं, उनकी दाह शांत करने के लिए दूध पीना जरूरी है। ब्रह्मपुराण में कहा गया है—'जिसके अंत में दूध पीने को मिले, ऐसा भोजन करे और जिसके अंत में दही खाया जाय, ऐसा भोजन न करे। दूध आदि मधुर भोजन, खट्टे, खारी और चरपरे भोजन से उत्पन्न हुए पित्त की वृद्धि को दूर करता है। भोजन के बाद नमकीन पदार्थ खाकर कुल्ला करें, दाँतों से भोजन के टुकड़े निकाल डालें। आचमन के पश्चात् भीगे हाथों से आँखों का स्पर्श करें। भोजन के पश्चात् नित्य सुख प्राप्त होने के लिए अगस्त्य आदि का स्मरण करें। भोजन के बाद सोना नहीं चाहिए।

भोजन के पश्चात् का कार्यक्रम—

भोजन के बाद धीरे-धीरे सौ कदम चलना चाहिए, इससे भोजन किया हुआ अन्न उदर में शिथिल होता है और गर्दन, घुटने तथा कमर को सुख होता है। भोजन करके बैठ जाने से शरीर में आलस्य और तंद्रा उत्पन्न होती है, थोड़ी देर पश्चात् विश्राम करने से शरीर पुष्ट होता है, आयु बढ़ती है। खाट त्रिदोषनाशक है, पृथ्वी पर सोना पुष्टिकारक है। भोजन के पश्चात् भी मन को प्रिय लगें ऐसे शब्द गाना-बजाना, सुंदर वस्तु को छूना, रूप, रस, गंध का सेवन करें, क्योंकि इनका सेवन करने से अन्न भली-भाँति ठहर जाता है।

पगड़ी और जूता से लाभ—

पगड़ी धारण करने से कांति बढ़ती है, केशों को हितकारी तथा पित्त, वात तथा कफ को दूर करने वाली है। पगड़ी हलकी

उत्तम है। पाँवों में जूतियाँ पहनना नेत्रों को सुखदायक, आयु बढ़ाने वाला, पाँवों के रोगों का नाशक, उत्साह और शक्ति देने वाला है।

धूप सेवन से लाभ—

सूर्य की किरणों का सेवन करने से पसीना, स्फूर्ति, रक्त, पित्त, तृषा, परिश्रम तथा उत्साह और विवर्तता की उत्पत्ति होती है।

दिन कैसे व्यतीत करें ?

यह विषय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दिन में श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ मित्रता करनी चाहिए, नीच का संग छोड़ देना चाहिए। देव, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथि की सेवा करनी चाहिए। याचक को निराश खाली न जाने दें। गुरु लोगों के पास सदा नम्रतापूर्वक बैठें। अपकार करने वाले के साथ भी उपकार करने में तत्पर रहे।

मनुष्यों के अभिप्राय को जानकर जो मनुष्य जिस प्रकार से प्रसन्न हो, उसी प्रकार बर्ताव करे, क्योंकि अन्य मनुष्यों को प्रसन्न रखना ही चतुरता है।

जिस प्रकार सहायता बिना मनुष्य सुखी नहीं होता, उसी प्रकार सबके ऊपर विश्वास करने वाला अथवा सबके ऊपर संदेह करने वाला भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता।

कभी उद्यम से खाली नहीं बैठना चाहिए। किसी के सफलीभूत उद्यम पर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। जो पुरुष ऐश्वर्यवान् के ऐश्वर्य को देखकर दुःख मानते हैं। वे सदैव दुःखी रहते हैं। विद्वानों को विचारना चाहिए कि अमुक पुरुष को किस प्रकार धन मिला ? उसी विद्या से, उसी उपाय से हम भी धन उपार्जन करके संसार में अपने यश का प्रकाश करें।

किसी समय भी किसी के जामिन न बने, किसी के वृथा साक्षी न हों, किसी की धरोहर न रखें और जहाँ जुआ होता हो, उसको दूर से ही त्याग दें।

इस प्रकार सदा सदाचार में तत्पर रहकर दिन व्यतीत करें और रात्रि को रात्रि के समयानुकूल कार्य करें। उक्त नियमों के अनुसार करने वाले को आयु, आरोग्यता, प्रीति, धर्म और यश की प्राप्ति होती है।

संध्या में यह कार्य न करें—

विद्वान् लोगों को संध्याकाल में आहार, मैथुन, निंद्रा, अध्ययन और मार्ग चलना—ये पाँच कार्य नहीं करने चाहिए। सायंकाल में भोजन करने से व्याधि उत्पन्न होती है, मैथुन करने से गर्भ में विकार आता है, पढ़ने से आयु का नाश होता है और मार्ग चलने से भय उत्पन्न होता है।

रात्रि में समय पर सोना—

रात्रि में समय पर सोने से धातुओं में समता आती है, आलस्य दूर होता है और पुष्टि की प्राप्ति होती है, रंग निखर आता है, उत्साह बढ़ता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जो मनुष्य शयन के समय बिनौले के पत्तों का चूर्ण शहद में मिलाकर चाटे, तो वह तंद्रा उत्पन्न करने वाला वायु के वेग के निरोध से सुखपूर्वक शयन कर सकता है।

रात्रि के अंत में पानी का नियम—

जो मनुष्य सूर्योदय के समय आठ अँजुली बासी पानी पीने का नियम करता है, वह रोग और जरा से छूटकर सौ वर्ष जीवित रहता है। जब रात्रि का चौथा पहर आरंभ हो, तो इस जल को पीने का समय जानना चाहिए। इस अभ्यास से बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, जठर, जरा, कोढ़, पेट के विकार मूत्रघात, रक्तपित्त, कर्ण रोग, कमर का दर्द, नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रातःकाल उठकर नित्य नाक से पानी पीने से बुद्धि पूर्ण होती है, नेत्रों की दृष्टि गरुड़ के समान होती है। संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं।

आत्महत्या मत कीजिए

आधुनिक युग में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या निरंतर वृद्धि पर है। मनुष्य अल्पायु होता जा रहा है। भारत के व्यक्तियों की औसत आयु ३० वर्ष है जबकि जापान की ४०, रूस ४५, फ्रांस की ५७, कैनाडा ६०, अमेरिका ६२, नार्वे ६३, न्यूजीलैंड की ६७ है। आज का जीवन इतना अप्राकृतिक हो चला है कि उससे आयु क्षीण होती जा रही है। जीवन तो अक्षय है, उसका उत्तरोत्तर विकास हो सकता है, किंतु हम स्वयं अपनी गलतियों और मूर्खताओं से जीवन रज्जु को काट देते हैं।

अल्पायु का प्रधान कारण है—"समय से "पूर्व अपनी शक्तियों का अपव्यय करना।" शक्तियाँ यदि उसी अनुपात में बढ़ती रहें, जिस अनुपात में व्यय होती हैं, तब तो स्वास्थ्य बना रह सकता है, किंतु यदि उन्हें फिजूल खर्च किया जाए, तो कब तक जीवन रह सकता है ? शक्तियों का अपव्यय हम अनेक विधियों से करते हैं। कैसे खेद का विषय है कि लोग जानते तक नहीं कि वे शक्तियों का अपव्यय कर रहे हैं और वे लगातार मूर्खता भरे अंधकार में अपना सर्वनाश किया करते हैं। जीवनी शक्ति का अपव्यय मुख्यतया निम्न प्रकार से होता है—

(१) **वीर्यपात की अधिकता**—अनियमित आहार-विहार से आयु क्षीण होना निश्चित है। वीर्य ही शक्ति है, जीवन धन है। एक बार व्यय हो जाने पर वह बाजार में खरीदा नहीं जा सकता। संपूर्ण शरीर जब पूरी तरह कार्य करता है, तब ४० ग्रास आहार से एक बूँद रक्त और ४० बूँद रक्त से एक बूँद वीर्य तैयार होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि दो तोला वीर्य के लिए एक सेर रक्त और एक सेर रक्त के लिए एक मन आहार की आवश्यकता है। आज हम जो भोजन करते हैं, उसका वीर्य बनने में पूरा एक महीना लग जाता है। अब विचारिये कि इस बहुमूल्य जीवन तत्त्व

का अपव्यय भला कैसे पूरा हो सकता है ? इसी के आधीन मनुष्य की संपूर्ण शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ, बल, बुद्धि, आयु रहती है। व्यभिचारी पुरुष क्षणिक सुख के लोभ में आकर वीर्य नाश नाना विधियों से कर डालते हैं। यह एक प्रकार की आत्म हत्या ही समझिये।

(२) **नशेबाजी**—संसार में जितने मादक द्रव्य हैं, उनका शरीर पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है। हम मानते हैं कि कभी-कभी दवाई के रूप में भी इनका उपयोग होता है किंतु आजकल तो धड़ाधड़ मादक द्रव्यों का प्रचार बढ़ रहा है। मनुष्य बुद्धि शून्य होकर राक्षस बना दीखता है।

शराब को लीजिए। बुरी समझते हुए भी अनेक व्यक्तियों ने इसे अपना लिया है। संसार के डॉक्टर आज इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि शराब का विष, चाय, न्यूमोनिया, विषम ज्वर, हैजा, लू और पेट, जिगर, गुर्दा, हृदय, रक्त वाहिनियाँ, स्नायु विकार तथा मस्तिष्क के कई रोगों का जनक है। शराब का उपयोग साधारण श्रमजीवी उत्तेजना के लिए करते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि यह शरीर परमेश्वर का मंदिर है। इसमें परमेश्वर विराजते हैं। प्रकृति मनुष्य की माता भी है और गुरु भी। प्रकृति ने शरीर ही में ऐसी-ऐसी गुप्त शक्तियाँ भरी हैं कि उन्हें शराब जैसी उत्तेजक वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। शराबखोरी विनाश है। श्री वैजनाथ महोदय ने लिखा है "शराब कार्य-शक्ति को घटाती है, रोजी छूट जाती है तो मनुष्य बाल बच्चों का पोषण नहीं कर पाता, गृह सौख्य का नाश हो जाता है। मानवजाति के सर्वनाश के लिए ही शराब की उत्पत्ति हुई है और वह इस पर तुली हुई है। शराब और व्यभिचार में गाढ़ी मित्रता है। जहाँ-जहाँ शराब है, वहाँ-वहाँ, व्यभिचार भी जरूर होता है। शराब पीते ही नीति-अनीति की भावना तथा आत्मसंयम धूल में मिल जाता है और स्त्री-पुरुष

ऐसी-ऐसी कुचेष्टाएँ करने लगते हैं, जो अच्छी हालत में वे स्वप्न में भी न करते।"

अफीम और तंबाकू बदन के रक्त को सुखा डालते हैं, मंदाग्नि उत्पन्न करते हैं। अफीम से बालक तक निःसत्व हो जाते हैं। श्रीयुत पैहम लिखते हैं—"नियमित रूप से अफीम का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को नीचे लिखी बीमारियाँ हो जाती हैं—कब्ज, रक्त की कमी, मंदाग्नि, हृदय, फेफड़े और गुर्दों के रोग, स्नायुजन्य कमजोरी, फुर्तीलेपन का अभाव, आलस्य, निद्रालुता, चित्तभ्रम, नैतिक भावना की कमी, काम का भार आ पड़ने पर चीं बोल देना, नैतिक अविश्वास और अंत में मृत्यु।"

तंबाकू भी कम शैतान नहीं है। महात्मा गांधी ने लिखा है—"मैं सदा इन टेव को जंगली हानिकारक और गंदी मानता आया हूँ। अब तक मैं यह न समझ पाया कि सिगरेट पीने का इतना जबरदस्त शौक दुनिया को क्यों है ?" तंबाकू से क्षय होना अवश्यंभावी है। क्षय फेफड़ों का रोग है। दूषित वायु जब पुनः-पुनः अंदर जायगी, तो निश्चय ही यह रोग हो जायगा। इसके अतिरिक्त हृदयरोग, उदर रोग, नेत्र रोग, नपुंसकता, पागलपन इत्यादि रोग भी तंबाकू के व्यसन से उत्पन्न होते हैं। डॉ० रगलेस्टर के अनुसार, "तंबाकू से पाचन यंत्रों की शुद्ध-रक्त उत्पन्न करने की शक्ति कम होकर सब प्रकार के अजीर्ण, संबंधी रोग उत्पन्न हो जाते हैं।" पंडित ठाकुरदत्त शर्मा के अनुसार, "अजीर्ण, कास, फेफड़ों के तमाम रोग, त्वचा रोग, निद्रानाश, दुःस्वप्न, चक्कर, नेत्ररोग, हृदय और मस्तिष्क की निर्बलता और उन्माद तंबाकू से होने वाले सामान्य रोग हैं।"

भाँग, गाँजा, चरस—ये सब प्रत्यक्ष विष हैं। चाय और काफी भी आयु के नाश करने वाले हैं। कॉफी में कैफीन, टैनिन इत्यादि विष मिले हुए होते हैं। चाय में निकोटीन नामक जहर होता है।

चाय और काफी पीने से दाँतों की जड़ें कमजोर हो जाती हैं। स्नायुओं को क्षणिक उत्तेजना तो मिलती है, किंतु शक्ति या रक्त नहीं बढ़ने पाता।

स्मरण रखिये, मादक पदार्थ विषैले हैं। आपकी आयु-बल, बुद्धि, उत्साह और नैतिकता का ह्रास करने वाले हैं। इनका पान जहर का पान है। खतरों से भरा है, आत्महत्या के बराबर है। आप जानते-बूझते क्यों विषपान कर रहें हैं ?

(३) **व्यभिचार**—यह पाप वह भयंकर राक्षस है, जो देखते-देखते मनुष्य के पतन का कारण बनता है। आज का बहुत-सा साहित्य हमारी भोली जनता को मृत्यु के मुँह में ढकेल रहा है। व्यभिचार वह सामाजिक बुराई है, जो प्रत्येक राष्ट्र के लिए हानिकारक है। स्त्री-पुरुष के जीवन तत्त्व को नष्ट करने के अनेक नए तरीके निकाल लिए हैं, जिन्हें कहना और चर्चा करना भी पाप है। स्मरण रखिये, आप व्यभिचार कर जगत् की आँखों से बच सकते हैं, किंतु प्रकृति बड़ी कठोर है। व्यभिचार का दंड उसके दरबार में गर्मी, सुजाक, स्वप्नदोष, नपुंसकता, नामर्दी इत्यादि मूत्र रोगों के रूप में मिलता है। घर का गंदा कामोत्तेजक वातावरण, सिनेमा, दुश्चरित्र व्यक्ति, अश्लील चित्र-पुस्तकें इत्यादि से बड़े सावधान रहें। इनमें लिप्त होकर आत्म-हत्या न कर बैठें।

(४) **चटोरापन**—कुछ लोग चाट पकौड़ी तरबतर मिठाईयाँ, बाजारू मसालेदार पकवान, दाल-सेब इत्यादि आवश्यकता से अधिक खाते हैं। भूख न होने पर भी पेट को इन जायकेदार वस्तुओं से भर डालते हैं। आवश्यकता से अधिक केवल स्वाद के लिए खाना, अपनी कब्र दाँतों से खोदना है। बड़े शहरों में रहने वाले फैशनेबिल व्यक्तियों की चटोरेपन की आदत बड़ी भारी कमजोरी है। अतः अनियमित आहार-विहार न कर बैठें। बहुत सोच-समझकर चलें।

(५) मानसिक दुर्बलताएँ—मृत्यु को पास लाने में मानसिक उद्वेग, क्लेश, दुःख, निराशा, कुढ़न, अहितकर चिंतन इत्यादि विकारों का बड़ा हाथ है। ये शत्रु दीखते नहीं, किंतु अंदर ही अंदर शरीर को जर्जर कर देते हैं।

प्रकृति नहीं चाहती कि हम इन विकारों के वशीभूत होकर जीवन का क्षय कर दें। प्रकृति ने हमें पूर्ण निरोग, आनंद और प्रसन्नता में रहने वाला प्राणी बनाया है। अनाकांक्षित विकार सब मानसिक शक्ति के आधीन है। मानसिक शक्ति द्वारा यदि श्रद्धापूर्वक आत्मविश्वास धारण किया जाए तो ये विकार सुगमता-पूर्वक दूर किये जा सकते हैं।

प्रकृति बड़ी दयालु एवं चतुर है। वह प्रत्येक मनुष्य को अपनी कमजोरियाँ सुधारने का अवसर प्रदान करती है। जब हम उत्साह, आनंद, आशा, प्रेम, सत्य की बात सोचते हैं, तो हृदय में नव जीवन का संचार होने लगता है, नसों में नया जोश, नवीन उत्साह आता है, किंतु जब हम अवांछित मनोविकारों में फँसते हैं, तो हमारी कार्य शक्तियाँ पंगु हो जाती है। यह इसीलिए कि फिक्र, क्लेश, दुःख, कुढ़न, क्रोध के विचार अप्राकृतिक हैं। वे मनुष्य के लिए नहीं हैं। उन्हीं में लिप्त रहना प्रकृति से दूर जाना है।

प्रो० जेम्स साहब कहते हैं कि, "यदि तुम दिन भर चिंतित अवस्था में बैठे रहोगे और बोलते समय बड़ी दुःखभरी आवाज में बोलोगे, तो इसका तुम्हारे शरीर पर बड़ा बुरा प्रभाव होगा।" डॉ० जार्ज विलियन कहते हैं कि "चिंता शरीर के अंदर ऐसे अदृश्य घाव करती है, जिसका प्रभाव दिमाग के कुछ जीव कोष्ठों पर पड़ता है। धीरे-धीरे वह असर नसों में फैलता है और बीमारियाँ पास आती हैं। दुर्विचार से ज्ञानतंतु निर्बल होते हैं। जो मनुष्य अपने दुर्विचार उद्वेगों और विकारों का अनुयायी बनता है, वह मृत्यु को बुलाता है।"

उपरोक्त सभी बातें—अपव्यय, वीर्यपात, नशेबाजी, पापकर्म, कुढ़न, निराशा, मृत्यु का भय, चटोरापन, अनियमित आहार-विहार आपके भीतरी शत्रु हैं। उन्हें अपनी आदत और स्वभाव में सम्मिलित कर आत्महत्या मत कीजिये।

हास्योपचार सर्वोत्तम है

प्रसन्नता जंतुनाशक औषधि है, जिस व्यक्ति ने यह तत्त्व सर्वप्रथम मालूम किया होगा उसकी गिनती महाचिकित्सकों में होनी चाहिए। हास्य तथा प्रसन्नता शरीर तथा मन पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालते हैं और शोक, भय, चिंता, क्लेश जैसी प्राणघातक वृत्तियों का उन्मूलन क्षण भर में कर डालते हैं। आनंद ईश्वरीय गुण है। चिंता, क्लेश इत्यादि आसुरी तत्त्व हैं। ईश्वरीय गुण का प्रतीक—आनंद, शरीर में मधुर रस उत्पन्न करता है और किसी अव्यक्त मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया से शरीर और मन पर तत्काल शांति का अलौकिक प्रभाव डालता है। जिस समय आनंद तथा प्रसन्नता अपना प्रभाव प्रकट करते हैं, तो समस्त प्रतिकूल प्रसंग विलीन हो जाते हैं। शरीर के अणु-अणु में नवोत्साह का संचार हो उठता है।

हँसने से तात्पर्य है कि आपके सुख की कली फूल की पंखुरी की भाँति खिल उठे, रोम-रोम में नव स्फूर्ति दौड़ जाए, जीवन रस से, नई शक्ति से, ओत-प्रोत हो उठे। मन की दुर्बलता, क्लेश, चिंता, दुःख की मलिनता या विकार धुल जाएँ। मुस्कराहट, ज्ञान-तंतुओं में जो कुछ दुर्बलता अथवा चिंता होती है उसे तत्काल दूर करती है। आनंद का प्रभाव शरीर तथा मन के कण-कण में होता है। जिस जगह औषधि लाभ नहीं पहुँचाती, जहाँ इंजेक्शन, कुनैन या अन्य कृत्रिम साधन कार्य नहीं करते, वहाँ हास्य भाव अपना करता है।

विपत्ति, चिंता तथा व्याधि की हास्य के साथ शत्रुता है, इसलिए प्रसन्नता की जितनी अधिकता होगी, उतनी ही व्याधि की न्यूनता होगी। जो हँसते हुए जीवन बितायेगा, उसका जीवन उतना ही स्वस्थ होगा। यदि आप रोग तथा व्याधि से मुक्ति चाहते हैं, जीवन का बीमा चाहते हैं, सौ वर्ष तक जीना चाहते हैं, तो एक ही मार्ग आपके समक्ष है—अंतर से, वास्तविक अंतःकरण से—हँसो ! खूब खिलखिलाकर हास्य फैलाओ। हँस-हँसकर रोग-व्याधियों को मार भगाओ। हँसो और सारा संसार तुम्हारे साथ आनंद से विभोर हो खिल-खिल उठेगा। रोओ, किंतु तुम्हारे साथ रोने वाला और कोई न मिलेगा। यदि तुम सुख से जीवन व्यतीत करना चाहते हो, तो हास्य की महिमा को अविलंब समझो और आज से अभी से उसका अभ्यास प्रारंभ कर दो। अपने जीवन को हास्य से मधुर बनाओ। स्वयं भी हँसो तथा दूसरों को भी हँसाओ।

जब हम हँसते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, तो हमारे लिए सारा संसार परिवर्तित हो जाता है और उसका एक नवीन दृष्टिकोण से निरीक्षण करने लगते हैं। मनुष्य को यह गाँठ बाँध लेना चाहिए कि जिस प्रकार भोजन, जल, वायु इत्यादि जीवनी शक्ति के पोषक तत्त्व हैं, उसी प्रकार और सच पूछा जाए तो उससे भी अधिक हास्य तत्त्व-आनंद में मग्न रहना आवश्यक है।

अतः हँसें, खिलखिलाकर, बिना किसी प्रतिबंध के हँसे। जब समस्त संसार आपको रुलाने को, जीवन के युद्ध में जब आँधी और तूफान वेग से आता दिखाई देता हो, जब यह प्रतीत होता है कि जीवन नौका उलटकर समुद्र की लहरों में विलीन हो जायेगी, तब खिलखिला कर हँस दें। आँधी तूफान शांत हो जायेगा, जीवन नौका पुनः आनंद से चलने लगेगी, हृदय खुशी से उछलने लगेगा।

खुलकर हँसने से फेफड़े, पेट आदि के आंतरिक अवयवों को व्यायाम प्राप्त होता है। हृदय अधिक तीव्रगति से कार्य करने लगता है। रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है, हास्य नेत्रों की शक्ति को तेजवान् करता है, छाती फैलती है और शरीर के प्रत्येक अंग को स्वास्थ्यप्रद गर्मी पहुँचती है। कठिन परिश्रम के मध्य में खुलकर हँस लेने से, मस्तिष्क को बहुत कुछ विश्राम प्राप्त हो जाता है, थकावट दूर हो जाती है और पुनः नवीन जोश से काम में भी जी लग जाता है।

हास्योपचार के लिये सहनशीलता की आवश्यकता है। जो जरा-सी बात पर उद्विग्न हो उठता है, वह कैसे हँसकर रोग दूर कर सकता है ? हँस वही सकता है, जिसमें दूसरों के अपराध क्षमा कर टाल देने की शक्ति हो, प्रतिहिंसा की ज्वाला हृदय में न सुलगती हो। यदि आपके विरुद्ध कोई अपशब्द कहे तब भी उद्विग्न न हों। यदि कोई आपको रुलाने के लिए तैयार बैठा हो, हानि का हिमालय टूट पड़ने को हो, तो भी हँसें।

आप हँसना सीखिये। दूध पीने वाला बालक जैसे निर्दोष हँसी हँसता है, वैसी ही हँसी, मस्ती बिखेरने वाली हँसी सर्वोत्तम दवा है। हास्य सेवन का आनंद लें। हँसने वालों का संग करें, आनंदजनक भविष्य को ही अपने सामने रखें, प्रत्येक पहलू में आनंद ही देखें, बरतें, सुनें और सुनायें। हास्य ही आपके दुःख-दर्द की एक मात्र दवा है।

हँसना और प्रसन्न रहना आप अपने स्वभाव का एक अंग बना लीजिए। खुशी में, सफलता में, प्राप्ति में, संपन्नता में तो हर किसी को हँसी आती है, असंस्कृत मनुष्य भी प्रसन्न होते हैं, इसमें कोई विशेष बात नहीं। आपको जिस कलापूर्ण हँसी का अभ्यास करना है, वह है हर स्थिति की प्रसन्नता। जब परिस्थितियाँ आपके विपरीत हों, असफलता का अंधकार छाया हुआ हो, हानि हो रही

हो, दिन काटना कठिन हो रहा हो, उस स्थिति में खिल-खिलाकर हँस पड़ना चाहिए।

नमकीन और मीठा दोनों ही स्वाद अपने-अपने ढंग का प्रसन्नतादायक स्वाद देते हैं, विपत्ति और संपत्ति दोनों ही स्थितियों में आपको आशान्वित, प्रसन्नचित्त, उत्साहित और प्रयत्नशील रहना चाहिए। प्रसन्नता द्वारा अनेक शारीरिक और मानसिक रोगों का प्रभाव और उपचार हो जाता है। प्रसन्न रहना, निरोग जीवन का ऐसा राजमार्ग है, जिस पर चलकर आप आसानी से स्वस्थ बलवान् और दीर्घजीवी बन सकते हैं।

□ □

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।